TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180450

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 G52C Accession No. P. G. H13743

Author गिरिधर गोपाल.

Title चाँदनी के खँडहर. 1962.

This book should be returned on or before the date last marked below.

चाँदनी के खंडहर

गिरिधर गोपाल

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५४ ई०
नवीन संस्करण : १९६२ ई०

तीन रुपया

मुद्रक :
पियरलेस प्रिन्टर्स, इलाहाबाद

वक्तव्य

अपने इस छोटे से उपन्यास में मैंने वर्तमान मध्यमवर्गीय परिवार की एक दिन की ज़िन्दगी का चित्रण करने का प्रयास किया है। आकाश से लिये गए धरती के किसी भाग की फोटो के समान आपको इसमें यह ज़िन्दगी दिखलायी पड़ेगी। मध्यम वर्ग की स्थिति, भावनाएँ, कुंठाएँ, संघर्ष, आशा, निराशा, स्वप्न, आदर्श और इन सबके बीच छटपटाती आत्माओं के क्रन्दन एवं विद्रोह की आवाज यदि आप तक पहुँच सके तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

२६ ए, बेली रोड,
नया कटरा,
इलाहाबाद।

—*गिरिधर गोपाल*
११ जून, १६५४

समर्पण

यह पुस्तक
ज़िन्दगी में
सबसे पहला रास्ता दिखलाने वाले अपने बाबा
स्वर्गीय श्री जगमोहन प्रसाद जी को ।

भूमिका

अणु-युग ने हमारे समाज में एक नये 'टाइप' को जन्म दिया है। इस 'टाइप' में वे युवक सम्मिलित हैं जो वय की दृष्टि से पूर्ण युवावस्था को प्राप्त होने पर भी भावना की दृष्टि से अपरिपक्व-यौवन ही रह गए हैं। इस कोटि का युवक इंगलैंड जाकर डाक्टरी पास करने की उम्र तक भी स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बंध के गंभीर पहलू से न तो परिचित ही रहता है, न परिचित होने की प्रवृत्ति ही रखता है। वह छात्रावस्था के सारे अनुभवों की स्थिति को पार कर जाने पर भी "सामने से आती जवान खूबसूरत लड़की" से जबर्दस्ती टकरा जाता है और ऐसा करते हुए उसकी "नसों में बिजली सी दौड़ जाती है" और "दोनों के अधरों पर एक लजीली मुस्कान खिलने लगती है।" जब लड़की भीड़ में गायब हो जाती है तब ऐसे युवक के मुख से बरबस निकल पड़ता है : "कोई बात नहीं। गुड बाई स्ट्रेञ्जर ! अलविदा अपरिचिता !"

इस कोटि के मस्त जीव के ऊपर जब भावुकता छाने लगती है तब वह लंबे अर्से से बिछुड़े हुए अपने कमरे से एकांत में कहता है : "हलो मिस्टर कमरे, गुड मार्निंग ! हाउ डू यू डू ? क्या हाल-चाल हैं ? कैसे रहे ? इन पाँच सालों मे क्या किया था ! कौन-कौन आया तुमसे मिलने ? कंतो भी आयी थी ? कै बार आयी थी ? क्या कहती थी। कुछ मेरे बारे में ? बताओ न यार ! तुम तो जानते ही हो कि उसके बारे में कुछ भी सुनने के लिए मैं क्यों और कितना उत्सुक रहता हूँ ? मुझसे क्या मतलब कंतो से ? अब तुम मुझसे कहला ही लेना चाहते हो ? शरम लगती है। अच्छा तो सुनो × × × मैं कंतो से....बहुत शरम लगती है। हँसते क्यों हो ? अपनी यह हंसी बन्द करो, नहीं रजाई में मुँह छिपा लूँगा। यह हँसी-मज़ाक का समय नहीं है। बिगड़ूँ नहीं ? तो बताओ न ! कंतो आयी थी ? सचमुच आयी थी ?

वाह ! बड़ी अच्छी है वह । क्या पहने थी ? नीली साड़ी, सुनहला ब्लाउज ? हाय रे, मैं न हुआ ! बालों में फूल और आँखों में काजल भी लगाये थी ? सुन्दर लगती रही होगी ? दुबली-पतली, छरहरे बदन की । कुंदनी रंग और बदन-बदन से पल-पल फूटी-सी पड़ती लाली । लंबे बाल, चौड़े माथे पर सितारों वाली टिकुली लगाती है, पार्टनर, चमाचम । बड़ी-बड़ी अधखुली आँखें, जो सदा लाज के भार से झुकी सी रहती हैं । और कभी-कभी तो ऐसा अनचित्ते से तिरछी आँख से देखती है कि मैं क्या परमेश्वर खीस निपोर कर उसके पैरों पर लोटने लगे । × × × हाँ, हाँ, आश्चर्य से क्या देख रहे हो, मैं जानता हूँ उस अमृत का स्वाद । लड़कपन में फूल तोड़कर डंठल से जो रस चूसा करते थे उसी की तरह है बिलकुल । तुमको भी चखाऊँ ? शर्म नहीं आती ? दोस्त बनते हो और ऐसा पतित विचार रखते हो ? मज़ाक था ? तब ठीक । शेक हैंड । शाम को कंतो से मिलूँगा और सब कुछ तुम्हें बताऊँगा । लेकिन कसम खाओ कि किसी से कहोगे नहीं । भाभी से भी नहीं, थैंक्यू कामरेड !"

यदि 'मिस्टर कमरे' को संबोधित करके कही गई इस तरह की बातों को कोई व्यक्ति 'परिहास' समझे तो सौ-सौ धिक्कार हैं उस नासमझ और जल्दबाज व्यक्ति पर । क्योंकि नये युग का यह प्रेम-पीड़ित युवक 'कामरेड कमरे' से जब यह कहता है कि "क्या कहती थी वह ? मुझे निरदयी कहती थी ? शिकायत करती थी मेरी ? तुमने उसे बतायी नहीं मेरी मजबूरी ? × × × मिला दो मुझे, उससे मिला दो भाई । बहुत कृपा होगी । जिंदगी भर एहसानमंद रहूँगा तुम्हारा । हमारी-तुम्हारी दोस्ती और पक्की हो जायगी । कंतो से मिला दो मुझे !" तब कहते-कहते वह अपनी पलकों में उलझे आँसुओं को उँगलियों से पोछने लगता है ।

इसीलिये मैं कहता था कि यह नया 'टाइप' कोई साधारण 'टाइप' नहीं है । अणु-युग की उपज होने के कारण उसकी प्रकृति में कुछ एकदम नये, विचित्र और पिछली परंपराओं के 'लॉजिक' द्वारा तनिक भी समझ में न आने वाले रहस्यपूर्ण तत्त्व प्रविष्ट होकर उसकी आत्मा के कण-कण के

साथ घुल-मिल गए हैं। उसके चरित्र का विश्लेषण करना कोई आसान काम नहीं है। जब हिरोशिमा में पहला अणु-बम गिरा था तब वैज्ञानिकों ने यह आशंका प्रकट की थी कि उसके द्वारा प्रजनित रेडियो-सक्रियता के कारण शिवजी के गण की तरह विचित्र आकृति-प्रकृति वाले मनुष्य पैदा होंगे। आकृति वाली बात अभी तक तो गलत ही सिद्ध हुई है, पर जहाँ तक प्रकृति का प्रश्न है, वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी अवश्य सफल हुई है।

अणु-युग के युवक की प्रकृति में जो वैचित्र्य दिखायी देता है, उसके कई रूप हमारे सामने आते हैं। इस कोटि का युवक ऊपरी विचार और व्यवहार में 'जोकर' की तरह लगने पर भी भीतर से गंभीरता कायम रखता है; अपने प्रेम के छिछलेपन का मज़ाक स्वयं उड़ाते हुए भी उसकी तीखी पीड़ा का अनुभव करके रोता है; पुराने नैतिक आदर्शों के अनुसार जो बातें और जो हरकतें अशिष्ट और असभ्य मानी गई हैं उन्हें बच्चों की-सी निश्छलता से पूर्णतया अपनाते हुए भी वह हयादार है—उसे एकांत कमरे के सामने भी अपना हृदय उभाड़ने में "शरम लगती है;" वह बाहर से निर्द्वन्द्व लगने पर भी भीतर से विविध द्वन्द्वों का शिकार बना रहता है। अपनी जिस प्रेयसी से मिलने के लिए उसका अणु-अणु विकल रहता है उससे भेंट होने पर वह अपने भीतर की पीड़ा को गंभीरता से प्रकट करने के बजाय कभी प्रेयसी का मजाक उड़ाता है, कभी मीठी चुटकियाँ लेता है और कभी बच्चों के-से खेल-बाड़ करता है। अपनी मार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का एकमात्र यही ढंग उसे मालूम है। लफंगा लगने पर भी वह कलचर्ड है अनुभूतिहीन जान पड़ने पर भी वह सहृदय है।

आज के युग के ऐसे जटिल-प्रकृति नायक की अवतारणा श्री गिरिधर गोपाल ने प्रस्तुत लघु-उपन्यास में की है। गिरिधर जी की प्रतिभा की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि ऐसे रहस्यमय चरित्र का चित्रण उन्होंने आश्चर्य-जनक कुशलता के साथ किया है। उन्होंने अंत तक उसके निर्वाह में पूरी सफलता पायी है।

'चाँदनी के खंडहर' में हम सब कुछ नया पाते हैं। थीम नयी है, पात्र नये हैं, शैली नयी है और कला-कौशल नया है। यह सब कुछ होने पर भी उसमें अंकित सारे चित्र और उसमें वर्णित सारी घटनाएँ सहज-स्वाभाविक लगती हैं। पुराने पाठकों को उसकी दुनिया एकदम भिन्न और अपरिचित लगने पर भी अकृत्रिम और वास्तविक बोध होती है।

प्रस्तुत उपन्यास की सारी कथा चौबीस घंटे की सीमित अवधि के भीतर ही समाप्त हो जाती है। विलायत से डाक्टरी पास करके लौटा हुआ वसंत विगत जीवन की मीठी, किन्तु बचकानी स्मृतियों, वर्तमान की अस्पष्ट उल्लास-भरी अनुभूतियों और भविष्य के अनिश्चित और अनगढ़ सपनों को लिए हुए अपने घर पहुँचता है। स्नेह-प्रेम से भरा, बचपन से लेकर जवानी तक की मीठी और प्यारी स्मृतियों के मधुर संभार से बोझिल निम्नमध्यवर्गीय परिवार का दुलारा लड़का रहा है वह। दुख में भी हँसने वाला, मुसीबतों के जंग पारस्परिक स्नेह की स्निग्धता से साफ करते रहने वाला वह छोटा-सा संसार उसके कितने रंगीले सपनों और पुलक-भरे अरमानों को बराबर अपने भीतर समाहित किये रहा है। पर पाँच वर्ष के प्रवास के बाद जब वह उसमें फिर प्रवेश करता है तब उसका सारा ढाँचा ही उसे एकदम बदला हुआ दिखायी देता है। लगता है जैसे इस बीच सारे मकान को, समूचे घर को ही टी० बी० हो गया है। न उसमें स्नेह की वह सजलता शेष रह गयी है, न वह राग की रंजिनी। उसकी स्नेह शीला भाभी काम करते-करते सूख कर काँटा हो गई हैं, बहन वीना खून थूकने लगी है, छोटा भाई राजू फटे पैण्ट और फटे जूते पहन कर, मुरझाया हुआ चेहरा लेकर स्कूल जाता है, आठ साल की बहन मीना गुड्डे-गुड़ियों की शादी रचाना और अपने साथ की बच्चियों से खेलना भूलकर दिन-भर घर के काम-काज में पिसी जा रही है, नन्हा सा कुँवर भी अत्यन्त उपेक्षित जीवन बिताता हुआ बचपन के सहज भोलेपन से वंचित होता चला जा रहा है, कर्मठ पिता बच्चों की तरह भावुक हो गए हैं और जरा-जरा सी बात पर रो देते हैं, बड़े-बड़े संकटों में भी प्रसन्न रहने वाली माँ के चेहरे पर से हँसी जैसे सदा के लिए छीन ली गई है, चिर-स्नेही भैया या तो

अपने ही भीतर खोये-खोये से लगते हैं या बात-बात पर झीखते रहते हैं। और प्यारी कंता तो पाँच साल तक उसके आगमन की प्रतीक्षा करते-करते कुछ और की और ही हुई चली जा रही है—अब भी वह यद्यपि उससे पहले की ही तरह खेलवाड़ की बातें करती है तथापि उस खेलवाड़ के झीने परदे के भीतर उसका काँटों से विंधा हृदय साफ दिखायी देता है। बसंत दिन भर में सब कुछ देखता है, सब-कुछ करता है, सबसे मिलता है, पुरानी स्मृतियों को ताजा करता है और फिर रात में अपने उस चिर-प्रिय घर के अंधकार के भीतर बन्द हो जाता है जो अब मौत का कुँआ बना हुआ है। यह सोच-सोच कर उसका हृदय छलनी बना जाता है कि सारे घर की आत्मा में छायी हुई टी० बी० का एकमात्र कारण वही है। उसकी पाँच साल की पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए सारा परिवार अपना सब-कुछ देकर निःस्व बन चुका है। सबकी आँखें अकेले उसी पर लगी हुई हैं। भयानक तूफान का झोंका उसके अंतर को बुरी तरह झकझोर जाता है। उसका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है। दिन-भर की सारी अनुभूतियाँ आतंकित करने वाले सपनों के रूप में उसके आगे आती हैं। चारों ओर....बाहर और भीतर....छाया हुआ अंधकार उसके प्रति अट्टहास करने लगता है। पर....और इसी एक 'पर' पर नायक के व्यक्तित्व के साथ ही सारे उपन्यास का अस्तित्व टिका हुआ है।

चारों ओर की गहन निराशा की कालिमा से पुते घुप अँधेरे का वह भैरव अट्टहास उपन्यास के नायक बसंत की आत्मा को हिला देने पर भी उसे लीलने में समर्थ नहीं होता। अपने परिपूर्ण यौवन की सारी अपरिपक्वता के बावजूद उसके भीतर आशा की अग्नि का एक ऐसा वज्रकण वर्तमान है जो किसी भी हालत में बुझना नहीं चाहता। और उसी चिर-दीप्त अग्नि-कण के बल पर वह उस महामोहमग्न निराशांधकार के अट्टहास से भी होड़ लगाता हुआ, स्वप्न ही में उससे भी तीव्र स्वर में ठहाका लगाता है : "हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा !" और फिर कहता है : "मैदान छोड़कर भाग रहे हो मिस्टर अँधेरे ! कायर ! नपुंसक ! तुम हार गए, मैं जीत गया !"

और यह अट्टहास केवल उपन्यास के नायक की ही नहीं, उपन्यास के लेखक की भी बहुत बड़ी जीत का परिचायक है।

गिरिधर जी ने जिस निम्न मध्यवर्गीय परिवार के अंधकारपूर्ण जीवन का सफल चित्र अंकित किया है वह आज के युग के संपूर्ण जीवन के चारों ओर छायी हुई काल रात्रि का प्रतीक है, जिसमें बड़े-बड़े प्रतिभाशाली लेखकों की आस्था के भी गर्क हो जाने का खतरा सब समय बना रहता है वर्तमान उपन्यास के लेखक ने जहाँ उस महा अंधकार का घोर यथार्थ और सजीव चित्रण अपनी बारीक तूलिका द्वारा गाढ़े काले रंग से किया है, वहाँ उसकी सघन कालिमा के भीतर निहित प्रकाश की रेखा का परिस्फुटन भी उसी निपुणता के साथ करके नये जीवन के नये सबेरे की नयी रोशनी का आशाजनक परिचय दिया है। उसके उपन्यास की सुन्दर सफलता का यह सबसे ज्वलंत प्रमाण है।

२, मिण्टो रोड, इलाहाबाद।
६-६-५४

इलाचंद्र जोशी

१

वह अपनी रिस्टवाच देख रहा है। ठीक छह बजे हैं। "इलाहाबाद आ गया।" रेल की गति क्रमशः धीमी होती जा रही है। यात्रियों ने अपना सामान सम्हालना शुरू कर दिया है। वह दरवाजे से सिर निकाले खड़ा है। उसकी आँखें स्टेशन को पी लेना चाहती हैं। यदि एक सेकंड में रेल नहीं रुकती तो शायद वह डिब्बे से प्लैटफार्म पर कूद पड़ेगा।

"इलाहाबाद आ गया।"

"मेरा इलाहाबाद।"

रेल रुक गई है। चढ़ने उतरने वालों की कशमकश। कुलियों की धक्कापेल। प्लैटफार्म का बढ़ता हुआ शोर। "पान बीड़ी सिगरेट।" "चाय गर्म चाय।" "खिलौने ले लो खिलौने।" "कुत्ता बन्दर सिपाही नेता बौने।" "ले लो खिलौने।" "अबे देखकर नहीं चलते बनता।" "मेरी लड़की खो गई। हाय मेरी लड़की।" "ताजे समाचार गम्भीर विचार, हाँ मेरे यार, अखबार पढ़ो अखबार।" "चूड़ी ले लो दिलदार, फीरोजाबादी, गोरी हो जाए बेकरार।"

लेकिन जैसे यह आवाजें उसे छूकर चली जाती हैं। जैसे उसका इन सब से कोई सम्बंध नहीं है।

कुली ने सामान उतार लिया है। भीड़ में रास्ता बनाता हुआ वह बढ़ रहा है। पीछे-पीछे कुली चल रहा है। उसके जूते से किसी का पैर कुचल रहा है। उसके कंधे से किसी को धक्का लग रहा है। कोई उसे गुस्से से देख रहा है, कोई दबी जबान में गाली दे रहा है। एक फल वाले की डलिया उसके धक्के से बिखर गई है। लेकिन फल वाला देखे, इसके पहले ही वह आगे बढ़ गया है। सामने से आती एक जवान खूबसूरत लड़की से वह टकरा गया है। नसों में बिजली सी दौड़ गई है। दोनों रुक गए हैं। दोनों के अधरों पर एक लजीली मुस्कान खिलने लगी है।

भीड़ का रेला आया। वह धक्के से काफी आगे बढ़ गया है। लड़की दिखायी नहीं पड़ रही है। "कोई बात नहीं। गुड बाई स्ट्रेन्जर। अलविदा अपरिचिता।"

एक मोटा नाटा भद्दा आदमी जो किसी कालेज का अध्यापक मालूम पड़ता है सामने से चला आ रहा है। शैतानी सूझ रही है। हाथ नीचे कर उसने मोटे की तोंद में घूँसा मार दिया है। मोटा उसकी हरकत समझ तो गया है पर बिना किसी प्रमाण के शायद उसकी कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही है। मोटे का गुस्सा शर्म और विवशता से भरा बैंगनी चेहरा, इस वक्त देखने लायक है।

स्टेशन का फाटक आ गया। वह बाहर निकल रहा है। जैसे कोई बरसों बाद जेल से बाहर निकले। टिकट कलक्टर मुस्करा रहा है, उसका हाल देख कर। वह भी मुस्करा उठा है।

"साहब ताँगा चाहिए, फर्स्टक्लास स्प्रिंग कुशन वाला" एक ताँगे वाला पूछ रहा है।

"ताँगा। हाँ ताँगा तो चाहिए" उसने अपने आपसे कहा।

वह ताँगे पर बैठ गया है। कुली ने सामान रख दिया है। "साहब, इनाम!" कुली की धीमी आवाज उसके कानों में पड़ी। उसने कुली को दो रुपये दिये। कुली ने काफी झुककर सलाम किया। वह खूब खुश होकर अकड़ गया है। उसने फेल्ट हैट शान से कुछ टेढ़ी कर ली है।

"हुजूर कहाँ चलना है" ताँगे वाला पूछ रहा है।

"नया कटरा" उत्तर देकर वह सीटी बजाने लगा है। ताँगा धीरे-धीरे चलने लगा है।

घोड़े के गले में पड़ी घंटियों की आवाज इस समय बहुत मधुर लग रही है उसे। सीमेंट और तारकोल से बनी पक्की सड़क पर मदगति से दौड़ते हुए घोड़े की टापों के स्वर के साथ यह घंटिया इस तरह बज रही हैं जैसे तबले की ताल पर किसी नर्तकी के घुंघरू बजें। आँखें बंद कर सुनने में तो सचमुच धोखा हो सकता है।

और मौसम भी कम रंगीन नहीं है। गुलाबी जाड़ा, ऐसा जो अच्छा लगे। फरवरी का पहला हफ्ता। सबेरे का समय। मंद-मंद झूमते हुए पेड़ों के सिर स्वर्ण मुकुट। जगमगाते हुए हल्के नीले कोहरे से ढँका शहर, पत्तियों से छन कर थिरकती धूप, जैसे गोरी के गाल की गर्माहट। ओस से भीगी सद्यःस्नाता, धरती का सिंगार करती किरणें। चिड़ियों का आर्केस्ट्रा। सुरभित हवा के अलमस्त झकोरे। उसका मन निकल-निकल जाता है, जैसे हाथ से पारा।

काला जूता सफेद ऊनी मोजा। स्लेटी ऊनी पैंट। सफेद सूती कमीज (नीचे बनियाइन भी)। भूरे रंग का स्वेटर। भूरे रंग का ऊनी कोट। गले में सफेद मफलर, जिसका ऊन इतना अच्छा है कि सिल्क मालूम पड़ता है। इतनी चीजें पहने हुए है वह। एक हाथ में चाँदी का कीमती सिगरेट केस। दूसरे में पत्र-पत्रिकाएँ।

फेल्ट हैट उतार कर उसने जाँघ पर रख ली है। "जाँघ पर, जैसे प्रेयसी का सिर।" चुप बदतमीज। हँसी आ रही है। एक मीठे आनन्द की लहर में डूबा हुआ है वह। बदन से गुदगुदी। आँखों में मस्ती। मन झूले पर। बाल हवा में उड़ते हुए।

"हवा में ऑक्सिजन होता है। स्वास्थ्य के लिए खूब लम्बी-लम्बी साँसें लेनी चाहिए।" स्कूल में मास्टर साहब बतलाया करते थे। लम्बी साँसें ले रहा है वह मुसकराता हुआ।

सामने चर्च है। विशालकाय प्राचीन और, अर्वाचीन कला का मिश्रण। बहुत अच्छा बना है। उसे बहुत पसंद है। एक अजब शांति सी इसकी लान पर बैठ कर उसे मिला करती थी। ताँगा सिविल लाइंस में प्रवेश कर रहा है। शाम की सुन्दरी सिविल लाइंस इस समय शांत क्लांत सी पड़ी है पिछली रात की रंगीनी मस्ती और विलास में चूर। उसके शृंगार फीके पड़ गए हैं। लगता है उसकी खुमारी रह-रह कर टूट रही है। सड़क बिल्कुल सुनसान है। कोई आदमी या सवारी गाड़ी चलती फिरती नहीं दिखायी पड़ती। फुटपाथ पर रखी बेंचें खाली हैं, जैसे दिन भर काम कर दफ्तर से निकलते समय किसी

क्लर्क का दिमाग। दूकानें, सिनेमा, होटल बार रेस्तोरां काफी हाउस सभी अभी बंद हैं। फुटपाथ पर कुछ काठ की गुमटियों से धुआँ उठ रहा है।

"पता नहीं यार दोस्त अब शाम को यहाँ आते हैं या नहीं। शाम को पता लगाऊँगा। फिलहाल लाँग लिव सिविललाइंस।"

"हाँ जी सिविल लाइंस। बहुत मधुर क्षण बीते हैं मेरे तुम्हारे दामन में। मित्रों के हास परिहास। डिनर, पार्टी, बाल डास। लड़कियों के पीछे सीटी बजाना। सिनेमा में सीट के नीचे से पैर निकाल कर सामने बैठी छोकरी का पैर दबाना। पंडित की पान की दूकान, नारा खाओ पान रहो जवान। चाँदनी रात में फुटपाथ पर टहलना। पेड़ की छाया में कस कर आलिंगन, हँस कर चुम्बन और आकाश में मिस्टर मून! अंग्रेज सिपाही के साथ एक लड़की के पीछे बाक्सिंग। पहलवान बनने वाले मित्र की डर के मारे घिग्घी बाँध जाना। "लड़ाई झगड़े से क्या फायदा है" कह कर एक दूसरे दुबले-पतले मित्र का बीच बचाव करना। सिपाही के साथ मित्रता का हाथ मिलाना। मेरा लड़की के साथ और सिपाही का उसकी 'मामा' के साथ प्रस्थान। "मामा माने मदर अर्थात् माँ। पापा माने फादर अर्थात पिता। किसी माने सिस्टर अर्थात् बहन।"

"कंतो का बंगला आ गया! कोई दिखायी नहीं पड़ता। पता नहीं वह अब कैसी हो। प्रेम के वादे तो बहुत किए थे। लेकिन इधर कई महीने से उसने कोई खत नहीं भेजा है। चलूँ क्या।" शाम को आऊँगा कंतो। सोलहो शृंगार किए मिलना। आरती का थाल लिए, फूल माला लिए। शाम को। परेशान न करो शाम को आऊँगा। चियरिओ। सौ बरस जियो। आइ लव यू स्वीट गर्ल। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ मीठी लड़की।"

"यह ताँगा बहुत धीरे-धीरे चल रहा है। कई बार ताँगे वाले से तेज चलाने के लिए कह चुका हूँ लेकिन हर बार वह एक चाबुक घोड़े को मार-कर अपना फर्ज अदा कर देता है। दो-चार कदम घोड़ा उछल कर चलने के बाद फिर धीमा पड़ जाता है। कमबख्त अभी से बूढ़ा हो गया। वनस्पति घी की औलाद।"

"अभी पुलिस लाइन ही पहुँचे हैं? तो ये सिपाही ड्रिल कर रहे हैं।

अटेंशन। लेफ्टहील। एबाउट टर्न। फारवर्ड मार्च। अच्छा। बैंडभी बज रहा है। लेकिन मुझमे क्या। यह घोड़ा जरा तेज चलता। तबियत परेशान हो गई है इससे।"

एक लोकगीत याद आ रहा है। "गोरी डोली से सिर निकालकर बार बार कहती है, ओ रे कहार जरा जल्दी-जल्दी चल। तुझे बनारसी सिल्क का साफा दूँगी।तेरी पत्नी को नौलखा हार। तेरे बच्चों को कामधेनु का दूधपिलाऊँगी। जल्दी। औरजल्दीचल भैया। मैं साजन के घर जारहीहूँ।"

" जी मैं आता है कहूँ। ओ जी मियाँ ताँगे वाले जरा जल्दी-जल्दी चलो। तुम्हें अपना यह नया कोटदे दूँगा। तुम्हारे घोड़े को महुए की कच्ची शराब पिलाऊँगा। तुम्हारी बीबी को—"

"कचहरी आ गई। बस यहाँ से करीब ५०० गज और है।"

उसने फेल्ट हैट लगा ली है और सामने की ओर मुँह कर बैठ गया है। मन मे आकुल पुलक। जैसे-जैसे रास्ता कटता है यह पुलक और आकुलता बढ़ती जाती है। ताँगे की लकड़ी वह बार-बार हाथ से दबा रहा है।

"ताँगे वाले जरा तेज चलो न।"

"पता नहीं वे लोग क्या कर रहे है इस समय किसी को मेरे पहुँचने की बात तो मालूम नहीं है। मैंने सूचना तो दी नहीं। अप्रत्याशित पहुँचने में अधिक सुख मिलता है।"

"कोई अखबार पढ़ रहा होगा। कोई शेव कर रहा होगा। कोई नहाता होगा। कोई पूजापाठ में लीन होगा। बच्चे तो अभी सो रहे होंगे।

उसके दिल की धड़कन तेज हो गई। साँसें भी काफी तेजी से ले रहा है। हाथ से पत्रिकाएँ छूट कर सीट पर गिर पड़ी हैं। वह ताँगे पर खुशी के झोंकों मे उछल रहा है। हँसने को जी चाहता। "तेज चलो ताँगे वाले तेज। और!"

उसने ताँगे वाले के हाथ से लेकर चाबुक घोड़े को मार दी है। "बढ़ के बेटा बढ़ के" "शाबाश!" "लेना है।" "मार दिया।" "वाह रे मेरे शेर।" "तुझ पर वारि-वारि जाऊँ।" "बक अप।"

"वह। उस मकान के सामने रोकना है!" वह ताँगे पर खड़ा हो गया है। अन्तर की प्रसन्नता एक तूफान बन गई है। उसका शरीर काँप रहा है। वह ओठ दबा रहा है लेकिन हँसी बरबस फूट-सी पड़ रही है। नाचने को जी चाहता है।

कुछ सुनायी नहीं पड़ रहा है। किसी चीज का ध्यान नहीं है। उसका सब कुछ मकान पर केन्द्रित है। केवल वही दिखायी पड़ रहा है उसे।

गला सूख गया है। शब्द नहीं निकल रहे हैं। छाती फटने वाली है। लगता है वह मकान बड़ी तेजी से उसके प्राण खींच रहा है।

एक दो तीन चार पाँच छै सात आठ नव दस!"

"रोक दो। आ गया। ताँगे वाले मेरा घर आ गया।"

ताँगा रुकने के पहले ही वह सड़क पर कूद पड़ा है। घर के भीतर दौड़ता हुआ, नाचता हुआ, चिल्लाता हुआ, घुस रहा। पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे है। वह अन्दर आँगन में पहुँच गया है।

"मैं आ गया। अम्मा। बाबू। मैं आ गया। राजू, बीना, मीना, कुँवर कहाँ हो? भैया! ओ भाभी। मैं आ गया।"

"यह कौन है? अम्माँ! मेरी अच्छी अम्मा। अम्मा री।"

चिल्लाता हुआ वह अपनी अम्मा की गोद में गिर पड़ा है। अम्मा उसके सिर पर हाथ फेरती हुई धीरे-धीरे कह रही हैं, "मेरा बेटा मेरा लाल!" वह कुछ और कहना चाहती है, लेकिन जैसे उनकी आवाज बंद-सी हो गई है। माँ बेटे दोनों की आँखों से आँसू बरसने लगे हैं। दोनों रो रहे हैं। जोर-जोर से रो रहे हैं। लगता है उसके आँसू कभी खतम नहीं होंगे। बस यही जी चाहता है कि रोता जाए; रोता जाए; ऐसे ही।

२

मन का तूफान धीरे-धीरे शांत हो रहा है। लगता है एक बोझ था जो उसके कंधे से उतर गया। अम्मा अपने आँचल से उसके आँसू पोंछती हुई उसे देख रही हैं, बड़े ध्यान से। वह धीरे-धीरे कह रही है, "मैंने तो समझा था कि तू भूल गया मुझे। अब नहीं मिलेगा इस जिन्दगी में। लेकिन मुझ गरीब-दुखिया की पुकार भगवान ने सुन ही ली। तू आ गया। प्राण लौट आए फिर से। अब तो नहीं जाएगा कहीं।"

"पाँच बरस। ये पाँच बरस काटे नहीं कटे हैं रे बसंता! अगर जानती कि तू इतने दिनों में लौटेगा तो तुझे जाने ही न देती। तूने और तेरे बाबू दोनों ही ने मुझसे तो उस समय कहा था कि तू सिर्फ छह महीने के लिए जा रहा है। झूठा लाज नहीं आयी अपनी अम्मा को धोखा देते। आने दे अपने बाबू को भी। देख आज कैसी खबर लेती हूँ। मास्टर साहब बनते हैं। आओ मास्टर; आज सारी मास्टरी भुला दूँगी।"

अम्मा की इस अमित स्नेह और सरल उलाहना से भरी वाणी की मीठी लहर में बसंत डूब ही रहा था कि उसे एक दूसरी उतनी ही मीठी आवाज सुनायी पड़ी।

"डाक्टर साहब नमस्ते। मुझे भी कोई दवा दे दीजिए सरकार!"

अम्मा की गोद से उछल कर बसंत खड़ा हो गया। सामने उसकी भाभी तारा खड़ी थी। तारा ने उसे बाँहों में भर लिया। वह भी उसकी चोटी खींचता हुआ कहने लगा, यह लो एक खूराक। दो खूराक। तीन—" वाक्य अधूरा रह गया। "कहिए बसंत कुमार जी" सुन कर वह चौंक पड़ा। "मेरी ही बीबी से रोमांस" और रोमांस की मधुराई में ताँगे का पैसा देना भी भूल गए। सबेरे-सबेरे यह डेढ़ रुपए की चोट मुझे ही। खैर।" बसंत ने देखा सामने बरामदे से उसका बड़ा भाई सुमंत मुस्कराता हुआ

चला आ रहा था। तारा को छोड़ वह सुमंत की ओर दौड़ पड़ा। सुमंत ने उसे गले से लगा लिया। थोड़ी देर तक दोनों भावावेश में एक दूसरे से गुँथे हुए इसी प्रकार खड़े रहे। दोनों की यह दशा देख कर अम्मा मुस्कराती हुई बोलीं;

"पागल हो गए हो क्या रे। दो के दोनों। बैठो भी अब।"

"अम्मा की बात सुन कर दोनों हँसते हुए अलग हो गए।

"कैसे रहे बसंत" सुमंत ने पूछा!

"अच्छा रहा भैया। अपनी कहो। बाबू कहाँ हैं? राजू और बीना भी नहीं दिखायी पड़ते। और कहाँ गए मीना कुँवर?"

"बाबू बाजार गए हैं" तारा ने उत्तर दिया, "राजू और बीना घूमने गए हैं। और मीना कुँवर तो यहीं थे। वह आ रही है मीना।"

बसंत ने देखा, रसोई की ओर से एक छोटी सी लड़की चली आ रही थी। कुछ मुस्कराती कुछ लजाती सी। वह सफेद धोती पहने थी जो रह-रह कर उसके पैरों में उलझ जाती थी। मीना इस वेष में ऐसी लगती थी मानो किसी ने गुड़िया को कपड़े पहिना दिए हों! बसंत उसकी ओर देखता रह गया। उसे यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि सफेद धोती में लिपटी यह छोटी सी लड़की मीना ही है। उसकी पुरानी छोटी सी मीना।

"चाचा जी नमस्ते।" बालिका ने उसके पास आकर लजाते हुए कहा।

"तो तू सचमुच मीना है", बसंत ने आश्चर्य से कहा—

"पहिचान गई मुझे! वाह री गुड़िया। सोने की चिड़िया। और वह कुँवर कहाँ है? वह तो भूल गया होगा मुझे। साल भर का तो था ही जब मैं गया था।" बसंत ने मीना की दोनों हथेलियाँ अपने हाथों में ले लीं।

"यह खड़े हैं कुँवर जी। शरमा रहे हैं। जाओ बेटा। चाचा जी के पास जाओ।" तारा ने उसे आगे बढ़ाते हुए कहा। बसंत ने कुँवर को गोद में उठा लिया।

"अरे बैठ भी जाओ लड़को" अम्मा बोली। उनकी ओर देख कर सब को जैसे कुछ याद आ गया।" अरे हाँ। बैठो बसंत" सुमंत बोला।

अम्मा के पास आँगन में पड़ी चारपाई पर तारा बैठ गई। पास ही पड़ी एक कुर्सी पर सुमंत और कुँवर को गोद में लेकर तखत पर बसंत बैठ गया। मीना सुमंत की कुर्सी के पास खड़ी हो गई। इस समय सभी बहुत प्रसन्न हैं। सब के मुख सवेरे के गुलाब की तरह खिले हुए हैं।

कुँवर के हाथ पर जाकर बसंत की दृष्टि रुक सी गई। वह सब कुछ लिए है जिसे अपने पैरों के नीचे छिपाने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ ऊपर उठाते हुए उसने कहा, "यह क्या लिए हो मिस्टर!" हाथ ऊपर उठ जाने पर कुँवर लजा गया। उसके हाथ में एक स्लेट का टुकड़ा है जिस पर अंग्रेजी के कुछ टेढ़े-मेढ़े अक्षर खड़िया से लिखे गए हैं। "यह तुमने लिखा है।" पुलक कर बसंत बोला "वाह बेटा! तुम तो अंग्रेजी भी पढ़ने लगे। यह क्या लिखा है? के यू एन डब्ल्यू ए आर—कुँवर। वाह-वाह! तुमने तो अपना नाम लिख लिया।"

कुँवर ने अपने छोटे-छोटे हाथों में मुख छिपा लिया।

"अच्छा कुँवर जी बताओ तुम्हारे पापा का क्या नाम है?" मीना बोली।

कुँवर ने मुख पर से हाथ हटा लिए पर कुछ बोला नहीं। "बताओ बेटा! चाचा को बताओ।" तारा ने उसे सहारा देते हुए कहा। कुँवर ने लजाते हुए धीरे-धीरे कहा, "मेरे पापा का नाम है मिस्टर सुमंत कुमार।"

"शाबाश!" सुमंत ने मुस्कराते हुए कहा।

"तुम्हारे बाबा जी का क्या नाम?" मीना ने पूछा।

"बाबू आनन्द कुमार रिटायर्ड हेडमास्टर" कुँवर का उत्तर सुन कर अम्मा हँसी पड़ीं और उन्होंने पूछा—

"और बेटा मेरा क्या नाम है?"

"तुम्हारा नाम है अम्मा और मम्मी का नाम है तारा।"

"अच्छा बेटा अपने चाचा का नाम तो बताओ?" तारा ने कहा। कुँवर बसंत की गोद से उतर कर तारा के पास चला गया और वहाँ से हँसते हुए उसने जोर से कहा "चाचा का नाम है घोंघा बसंत!"

"क्या!" बसंत ने चौंक कर कहा। लेकिन इसका उत्तर सबकी सम्मि-

लित हँसी ने दिया। तारा पहले उसे मज़ाक में घोंघा बसंत कह कर चिढ़ाया करती थी। कुँवर के मुँह से इतने दिन बाद ये शब्द सुन कर वह बहुत झेंप गया। उसे झेंपता देखकर तारा सुमंत मीना अम्मा सभी हँसते हुए कहने लगे, "कहिए घोंघा बसंत जी !" "घोंघा बसंत जी हाल चाल कैसा है !" "आप नर्वस क्यों हो रहे हैं, घोंघा बसंत जी !" "वाह ! आदमी हो तो आपकी तरह जिसे बच्चा भी पहिचान जाए।" "भाइयो और बहनो, प्रेम से बोलो डाक्टर घोंघा बसंत की जय।"

इन लोगों की बातें सुन कर बसंत पानी-पानी हो गया। उसके गाल गर्म हो गए। आँखें झुक गईं। वह एक हथेली दूसरी पर रख कर मलने लगा।

"दुष्ट कहीं के। रहो बेटा कुँवर, तुम्हारा कान न गर्म किया तो बात क्या। भाभी की चोटी में तो चूहा बाँध दूँगा भैया हैं। बड़े भाई तो मुझे बेवकूफ बनाएँगे, अपने लड़के से मेरा मज़ाक उड़वायेंगे ? और अम्मा को भी इस बुढ़ौती में मज़ाक सूझ रहा है। खैर कभी मेरा भी मौका पड़ेगा। एक-एक को देख लूँगा। जो जैसा होता है वह दूसरे को भी वैसा समझता है। यह लोग खुद घोंघा बसंत हैं। पोंगा पंडित हैं। फिर मुझसे क्या मतलब। हाथी अपने रास्ते जाता है। कुत्ते भोंकते हैं। मेरे पास इतना समय नहीं कि यह सब बेकार बातें सुनूँ। घोंघा बसंत, घोंघा बसंत ! नाक में दम कर दिया है। कभी खतम भी होगा यह सब।"

"अच्छा भाई अब बंद करो हँसी मज़ाक नहीं तो डाक्टर बसंत कुमार रो देंगे।" सुमंत के शब्द सुनकर उसके बदन में आग लग गई। उसके जी में आया कि सुमंत को—

तभी किसी के पैरों की आवाज से उसका विचार टूट गया। कोई काफी तेजी से चला आ रहा था। सबकी दृष्टि बाहर वाले दरवाजे की ओर चली गई। "कहाँ है ? कहाँ है बसंत" अन्दर आते हुए मास्टर साहब बोले।

"बाबू !" बसंत चिल्ला पड़ा। दौड़ कर वह पिता से लिपट गया। पिता के कंधे पर सिर रख कर उसने अपनी आँखें बंद कर ली। पहले से

जमा और हँसी मज़ाक के कारण उमड़े आँसू खुल कर बरसने लगे। मास्टर साहब की आँखों से भी जल धारा बह चली और इस तरह जैसे उन्हें बहुत दिनों बाद रोने का मौका मिला हो।

"तू आ गया बसंत ? तू आ गया ! अब ये बुरे दिन गए। सुनती हो बसंत की माँ अब मेरे बुरे दिन गए। अब मैं सिर ऊँचा कर घर से बाहर निकल सकूँगा। अब मुझे कोई कुछ न कह सकेगा। देखती हो ! मेरा बेटा आ गया। इंगलैण्ड से डाक्टरी पास कर लौटा है। शहर के सबसे बड़े अस्पताल का·····हमारा बसंत सबसे बड़ा डाक्टर होगा। हाँ ! अब मेरे बुरे दिन गए। गए—हिप हिप हिप हुर्रे ! हुर्रे हुर्रे—"

"बाबू" सुमंत कुछ घबरा कर बोला "बसंत आज ही घर आया है बाबू"

"हाँ आज बसंत घर आया है।" मास्टर साहब उसी प्रवाह में बहते हुए बोले। सहसा वह चौंक से पड़े।

"ओह ! मुझे माफ करो सुमंत की माँ ! तारा बहू सुमंत बेटा मुझे माफ करो।" मास्टर साहब धीरे-धीरे अपनी भावनाओं पर काबू पाने का प्रयास करने लगे। उनकी आवाज संयत होने लगी। उन्होंने अपने आँसू पोंछे और बची हुई सिसकियों को बल पूर्वक ओंठों में दबा लिया। "बसंत घर आया है। हाँ ! आज तो हमें सब कुछ भूल कर केवल यही याद रखना चाहिए कि हमारा बसंत घर आया है" उन्होंने धीरे-धीरे कहा।

छोटे से आँगन मे एक खामोशी सी छा गई है। सभी चुप, खोए-खोए से बैठे हैं। लगता है सभी के मन में हजारों बातें उमड़ आई हैं जिन्हें एक साथ बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा है।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद मास्टर साहब ने दोनों हथेलियों में बसंत का मुख ऊपर उठाया और धीरे से कहा।

"कहो बेटा !" बसंत को लगा जैसे यह आवाज बहुत दूर से चली आ रही है। उसका रोम-रोम काँप उठा। एक अजब भय से वह फिर मास्टर साहब से लिपट गया उसी तरह जैसे लड़कपन में भूत-प्रेत की किसी कल्पना से डर कर उनसे लिपट जाया करता था।

"गर्म चाय। गर्म पकौड़ी। बिना पैसे की चाय। बिना पैसे की पकौड़ी। गर्म चाय। गर्म पकौड़ी।" बाजार में सामान बेचने वाले खोंचे वालों की तरह सिर पर ट्रे रख कर आवाज लगाती हुई, चाय के तीन गिलास और पकौड़ियाँ लिए मीना चली आ रही थी। उसकी मुख-मुद्रा और हाव-भाव देखकर सभी हँस पड़े। सबके मन का भारीपन दूर हो गया। बीच की मेज पर गिलास और पकौड़ियाँ रखती हुई वह बोली,

"चाचा को चाय, बाबा को पकौड़ी
ममी को ठेंगा, पापा को कानी कौड़ी।"

मीना की बात सुनकर सुमंत और उसकी पत्नी कुछ झेंप गए। मास्टर साहब और बसंत तखत पर बैठ गए। कुँवर आकर मास्टर साहब की गोद में बैठ गया।

"चाय पियो बसंत" अम्मा ने कहा।

बसंत ने गिलासों की ओर देखते हुए कहा,

"लेकिन गिलास तो तीन ही हैं।"

"ठीक तो है" अम्मा ने कहा, "मैं पीती नहीं तुम्हारे बाबू को डाक्टर ने मना किया है। तुम सुमंत और बहूरानी तीन ही तो पीने वाली हो। मीना बड़ी होशियार लड़की है।"

"बड़ी होशियार" मास्टर साहब ने कहा, "और बड़ी होनहार। आठ बरस की उमर में ही इतना लिख पढ़ गई है, इतना काम करने लगी है कि क्या कोई सोलह बरस की लड़की करेगी। इम्तहान में अच्छे नम्बर पाती है। अंगरेजी खटाखट बोलती है। और साथ-साथ घर का काम काज भी देखती है झाड़ू-बहारू से लेकर रोटी-पानी तक में हाथ बँटाती है। अरे यह तो किसी बड़े घर के लायक थी। कहाँ हम अभागों के यहाँ पैदा हुई।"

पिता के अन्तिम वाक्य से बसंत को एक हल्का धक्का सा लगा, लेकिन वह इसके बारे में अधिक सोचता इसके पूर्व ही सुमंत ने कहा, "बाबू पकौड़ी खाओ। अच्छी बनी है।"

"अच्छी क्यों न होगी। मेरी मीना ने बनायी है अच्छी तो होगी ही।" यह कह कर मास्टर साहब ने एक पकौड़ी मुँह में डाली और कहा, "वाह मीना को तो इनाम मिलना चाहिए।" "जरूर" कहकर बसंत उठा और अपना एक संदूक उठा लाया।

इंगलैंड से प्रस्थान करने के पूर्व उसने अपने परिवार वालों के लिए भेंट स्वरूप कुछ चीजें खरीदी थीं। बातचीत के सिलसिले में वह इन्हें बिल्कुल भूल गया था। पिता के मुख से इनाम शब्द सुनते ही उसका ध्यान इनकी ओर गया।

इन भेंटों को खरीदने के लिए उसने साल भर तक लन्दन के एक प्राइवेट मेडिकल क्लिनिक में नौकरी की थी। सन्दूक खोलते समय उसके मन का सारा स्नेह उमड़ आया। वह अपने घरवालों के बहुत पास आ गया। उसके हाथ रह-रह कर काँपने लगे। सन्दूक खोल कर वह मुस्कराते हुए बोला, "सबसे पहले कुँवर, लो बेटा! आओ। आओ" एक छोटी सी हवाई बन्दूक, एक अमेरिकी काउ ब्वाय हैट और एक नर्सरी गीतों की सचित्र किताब कुँवर की गोद में उसने रख दी। कुँवर खिल गया। हैट लगाकर और कंधे पर बन्दूक रख कर वह अकड़ कर खड़ा हो गया। ताली बजा कर मास्टर साहब बोले "अटेंशन" और कुँवर ने फौजी सलाम किया।

प्लास्टिक का एक फूलदार छाता, एक क्रीम कलर की फ्राक और एक जोड़ा सफेद सैंडिल निकाल कर बसंत ने मीना की ओर देखा। मीना ने लजा कर अपना इनाम लिया।

"यह छाता तो बहुत अच्छा है।" सुमंत ने कहा।

"छाता बाद में देखिएगा। पहले अपनी चीज तो देखिए। यह लीजिए।" एक रिस्टवाच उसकी ओर बढ़ाता हुआ बसंत बोला। घड़ी लेकर सुमंत ने सब लोगों की ओर देखा और कहा, "अब मुझे दफ्तर जाने में कभी देर नहीं होगी।"

"और यह रही भाभी की चीज"

बसंत ने एक छोटा सा बहुत खूबसूरत मोतियों का हार निकाला।

"इसे तो मैं अपने हाथ से पहनाऊँगा" कहता हुआ वह तारा की ओर बढ़ा।

बसंत हार पहिना रहा था और तारा आँखें बंद किये लजा रही थी। हार पहिना चुकने के बाद उसने कहा, "हाँ भाभी, जरा मुँह तो देखें" तारा ने एक तिरछी नजर उसकी ओर फेंकी और अम्मा के आँचल में मुँह छिपा लिया।

"छोटे भैया नमस्ते" बाहर वाले दरवाजे से प्रवेश कर बीना ने कहा।

"गुड मार्निङ्ग छोटे भैया" उनके पीछे आता हुआ राजू बोला।

"बीना नमस्ते। और राजू। सोल्जर राजू। गुड मार्निङ्ग कामरेड। कहाँ थे तुम लोग अभी तक, इधर आओ। यह लो अपने प्रेजेंट" सन्दूक से बसंत एक हल्के फर वाला लेडीज ओवर कोट और एक केमरा निकालते हुए बोला।

बीना और राजू ने अपने प्रेजेंट लिए और सुमंत की कुर्सी के पास खड़े हो गए।

"अब बचे बाबू और अम्मा" कहते हुए बसंत ने सन्दूक में हाथ डाला।

"अरे तू हमारे लिए भी कुछ लाया है क्या रे" अम्मा चारपाई से उठती हुई बोलीं, "तू तो बड़ा नादान है रे बसंता! क्या जरूरत थी इतना पैसा खच करने की?"

"अम्मा के लिए कम्बल बाबू के लिए फोल्डिंग छड़ी।" बसंत ने कहा और सन्दूक से मुलायम ऊन का सफेद कम्बल और तीन टुकड़ों की एक पहाड़ी फोल्डिंग छड़ी निकाली। पिता को छड़ी और अम्मा को कम्बल देकर उसने ताली बजायी और कहा, "अब खेल खतम" "अभी नहीं" तखत पर खड़ा होकर कुँवर बोला "बोलो डाक्टर बसंत कुमार की जय" और मास्टर साहब अम्मा सुमंत तारा बीना राजू मीना सभी के मुख से अनायास निकल पड़ा "जय! डाक्टर बसंत की जय।"

बसंत को लगा कि इस जयघोष के रूप में उसके घरवालों ने उसे दुनिया की सबसे बड़ी चीज दे दी है। थोड़ी देर बाद मास्टर साहब ने कहा, "और कहो बसंत।"

"जी"

"रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई।"

"नहीं। बहुत आराम से आया हूँ।"

कुछ देर बाद मास्टर साहब ने फिर प्रश्न किया, "इंगलैंड कैसा देश है बसंत ?"

"अच्छा है"

"कैसे आदमी हैं वहाँ के ?"

"अच्छे भी, बुरे भी।"

बसंत का छोटा सा उत्तर पाकर मास्टर साहब बोले, "पूरा हाल फिर कभी बताना।" न जाने क्यों बातचीत का सिलसिला आगे नहीं बढ़ पा रहा था। टूट-टूट जाता था। छड़ी पर कई बार हाथ फेरने के बाद मास्टर साहब ने कहा, "अब क्या करने का इरादा है बसंत। अब तो तुम इंगलैंड हो आए।"

इस प्रश्न का उत्तर बसंत देता इसके पूर्व ही तारा बोली, "अब तो सब से पहले इनकी शादी कर दीजिए बाबू !"

"हाँ, जल्दी से शादी कर दो" अम्मा ने पुलककर कहा, "और सब बाद में देखा जायगा।

"हाँ, शादी कर दो बाबू" सभी ने अम्मा का समर्थन किया। कुँवर तो खुशी के मारे नाचने लगा।

"शादी तो होगी ही" मास्टर साहब बोले, "इसकी शादी होगी। बीना की भी शादी होगी। बीना" वह कुछ चौंक से पड़े। पिता के शब्द सुनकर बीना रसोईं की ओर चली गई। सुमंत ने पिता की ओर देखते हुए कहा, "बातें तो बाद में होंगी बाबू पहले इसे कपड़े तो बदल लेने दीजिए। सफर से चला आ रहा है। जाओ बसंत नहाओ धोओ। मीना। खाने के लिए क्या बना रही हो बेटी ! चाचा के लिए खूब बढ़िया चीजें बनाना।"

"आज तो मैं खाना बनाऊँगी।" कहती हुई अम्मा चारपाई से उठीं और रसोईं की ओर चल पड़ीं।

"नहीं अम्मा, तुम बैठो। हम लोग काफी हैं," तारा ने उन्हें रोकना चाहा।

"आज तुम लोगों की छुट्टी" अम्मा बोलीं और रसोई में घुस गईं।

बसंत अपने कमरे की ओर चला। कुछ कदम चलने के बाद उसके कानों में एक हल्की आवाज आई। मास्टर साहब पूछ रहे थे।

"कुछ बताया तो नहीं ?"

"नहीं !" सुमंत ने उत्तर दिया।

बड़े भाई और पिता का यह छोटा सा प्रश्नोत्तर सुन कर वह ठिठक सा गया, किन्तु दूसरे ही क्षण उसका ध्यान आप से आप उधर से हट गया। हवा का एक झोंका आया और उसे छूकर चला गया।

३

बसंत का मकान छोटा और पुराने ढंग का बना हुआ है । मकान का मुख्य द्वार सड़क की ओर है । मुख्य द्वार के जंग लगे लोहे के फाटक से प्रवेश करने पर सबसे पहले बाहरी आँगन पड़ता है जो कच्चा है । आँगन में बाईं ओर अकेले और पपीते के कुछ पेड़ दो पंक्तियों में लगे हैं । दाहिनी ओर दीवार के पास दो-तीन लताएँ हैं । लताओं के बाद गुलाब की क्यारियों की दो पंक्तियाँ हैं । आँगन के बाद मास्टर साहब का कमरा है । यह कमरा ड्राइंग रूम या बैठक का काम भी देता है । मास्टर साहब के कमरे के बगल से घर के भीतर जाने का एक लम्बा रास्ता है जिसे बसंत के घर वाले गलियारा कहते हैं । इसमें बाहर की ओर एक दरवाजा है जिसे बंद कर देने पर अन्दर का हिस्सा बाहर से बिल्कुल अलग हो जाता है । मास्टर साहब के कमरे से मिला एक दूसरा कमरा है जो अन्दर की ओर खुलता है । इसमें बसंत की छोटी बहिन बीना और अम्मा रहती हैं । इस कमरे के सामने एक छोटी सी दालान और आँगन । यह आँगन भी बाहर वाले की ही तरह कच्चा है । इसके बीच में हरसिंगार का एक पेड़ लगा है । आँगन की बाईं ओर अनाज इत्यादि रखने की एक छोटी सी कोठरी, रसोई, गुसलखाना और शौचालय है । अम्मा के कमरे के ठीक दूसरी ओर आँगन से मिला एक कमरा है जिसमें सुमंत उसकी पत्नी तारा और बच्चे मीना कुँवर रहते हैं । इसी कमरे के बगल से ऊपर जाने की सीढ़ी है । सुमंत के कमरे के ऊपर दूसरी मंजिल पर बसंत का कमरा है । पिछले पाँच बरसों से इसमें उसका छोटा भाई राजू रहता है ।

मकान छोटा होने के कारण, बसंत के कमरे से, नीचे आँगन या रसोई में होने वाली सभी बातें साफ सुनायी पड़ती हैं ।

सीढ़ी के पास पहुँचते ही बसंत थोड़ी देर के लिए रुक गया, फिर बाएँ हाथ से लोहे की रेलिंग के शीतल स्पर्श का अनुभव करता हुआ, एक-एक पत्थर को गौर से देखता हुआ बहुत धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा, जैसे जिन्दगी की

पुरानी मंजिलों को एक बार फिर पार कर रहा हो। यह सीढ़ियाँ उसके उत्थान की विकास की प्रगति की और बड़े होने की विभिन्न अवस्थाएँ थीं। इसके पत्थरों में लड़कपन से जवानी तक का उसका सारा इतिहास लिखा था जिसे केवल वही पढ़ सकता था। एक मीठे दर्द से उसका मन भर गया। उसकी हालत इस समय उस व्यक्ति की तरह है जो किसी कारणवश अपना पिछला जीवन भूल गया था, लेकिन आज फिर सहसा जिसकी चेतना लौट आई है। हाँ वह सीढ़ियाँ यह रेलिंग यह पत्थर ऊपर से नीचे तक जैसे उसी का ही दूसरा रूप हैं।

सातवाँ दर्जा, आठवाँ दर्जा, नवाँ, हाई स्कूल, इण्टरमीडिएट, बी. एस. सी.। जाड़े के दिनों में इस खुली सीढ़ी पर बैठकर धूप में पढ़ना लिखना, ताश खेलना, चाय पीना गपशप करना और दोपहर में कभी-कभी सो भी जाना। बी. एस. सी. का डिप्लोमा मिलने पर गाउन पहिनकर इसी सीढ़ी पर खड़े होकर फोटो खिचाना। एक-एक पत्थर पर सबका बैठ जाना और सीढ़ियों से हिमालय पर्वत बनाने का खेल खेलना। किसी बातपर बिगड़ जाने पर अम्माका कई बार नीचे से बुलाना पर उसका कमरे से न बोलना; सीढ़ियों पर अम्मा के कदमों की आवाज सुन कर उसका बिस्तर पर रजाई से मुँह ढक लेना। हाँफती हुई अम्मा का कमरे में आकर उसे मनाना और इस आखिरी सीढ़ी से एक बार फिसल कर गिर पड़ने के कारण उसके बाएँ पैर की हड्डी टूट जाना। ओफ़! बड़ा दर्द हुआ था। आपरेशन के बाद उसे तीन महीने तक पलंग पर ही लेटा रहना पड़ा था।

उसने अपने बाएँ पैर की ओर देखा और इतनी सावधानी से उसे उठा कर कमरे में रखा मानो उसे डर था कि कहीं लापरवाही से फिर न हड्डी खिसक जाए। एक बार की जुड़ी हड्डी कमज़ोर तो होती ही है। कमरे में पहुँच कर उसने आँगन के तरफ की दोनों खिड़कियाँ खोल दीं। ओवरकोट, कोट, स्वेटर, कमीज, मफलर और फेल्ट हैट खूँटियों पर टाँग दिये। जूता मोजा खोलकर खूँटी के नीचे फर्श पर रख दिया। पैंट तह कर एक कुर्सी के हत्थे पर टाँग दिया। सन्दूक से चौड़ी धारियों वाला एक स्लीपिंग सूट और चप्पल निकाल कर पहिन लिया।

पलंग के पास आकर उसने चप्पल उतार दी और आराम से लेट गया

एक अँगड़ाई लेकर, "तो मैं घर आ ही गया। अपने घर। पुराने घर! स्वीट होम! बाबू के पास। अम्मा के पास। भाभी के पास। भैया के पास। राजू बीना के पास। मीना कुँवर के पास। वेरी गुड। वहुत अच्छे। मेनी-मेनी थैंक्स मिस्टर गाड फार दिस काइण्डनेस। श्री ईश्वर, इस कृपा के लिए अनेक धन्यवाद। आदमी तुम अच्छे मालूम पड़ते हो। इसलिये तुम्हारी लम्बी सफेद दाढ़ी पर एक चुम्बन।"

"यह मेरा कमरा है। पुराना साथी। हलो मिस्टर कमरे गुड मार्निङ्ग। हाउ डु यू डू? क्या हाल चाल है? कैसे रहे? इन पाँच सालों में क्या किया? कौन-कौन आया तुमसे मिलने? कंतो भी आई थी? कै बार आयी थी? क्या कहती थी? कुछ मेरे बारे में? बताओ न यार! तुम तो जानते ही हो कि उसके बारे में कुछ भी सुनने के लिए मैं क्यो और कितना उत्सुक रहता हूँ। सचमुच आई थी? बोलते क्यों नहीं? मैं क्यों पूछना चाहता हूँ? मुझसे क्या मतलब कंतो से? अब तुम मुझसे कहला ही लेना चाहते हो? शरम लगती है। बता भी दो यार। नहीं बताओगे जब तक मुझसे कहला नहीं लोगे? अच्छा तो सुनो। मैं कंतो से। बहुत शरम लगती है। हँसते क्यों हो? अपनी यह हँसी बंद करो नहीं रजाई में मुँह छिपा लूँगा। यह हँसी मज़ाक का समय नहीं है। बिगड़ूँ नहीं? तो बताओ न। कंतो आई थी? सचमुच आयी थी? वाह! बड़ी अच्छी है। क्या पहने थी? नीली साड़ी, सुनहला ब्लाउज़। हाय रे, मैं न हुआ। बालों में फूल और आँखों में काजल भी लगाए थी? सुन्दर लगती रही होगी। दुबली-पतली छरहरे बदन की। कुंदनी रंग और बदन से पल-पल फूटी सी पड़ती लाली। लंबे बाल। बड़ा मादक तेल लगाती है बालों में। एक बार तो घंटों उसके बालों से मुँह ढक कर पड़ा रहा। चौड़े माथे पर सितारों वाली टिकुली लगाती है, पार्टनर, चमाचम। बड़ी-बड़ी आधी खुली आँखें जो सदा लाज के भार से झुकी सी रहती हैं। और कभी-कभी तो ऐसा अनचित्ते में तिरछी आँख से देखती है कि मैं क्या परमेश्वर खीस निपोर कर उसके पैरों पर लोटने लगे।"

"नाक में छोटी सी हीरे की कनी वाली कील, कान में टाप्स। भरे हुए

गुलाबी गाल और पतले ओंठ जो सदा मुस्कराते से रहते हैं। उसके ओठों में जानते हो क्या है ? तुम क्या जानो मिस्टर कमरे कि उसके ओठों में अमृत है। हाँ-हाँ, आश्चर्य से क्या देख रहे हो मैं जानता हूँ, उस अमृत का स्वाद। लड़कपन में फूल तोड़ कर डंठल से जो रस चूसा करते थे उसी की तरह है बिल्कुल। तुमको भी चखाऊँ ? शर्म नहीं आती ! दोस्त बनते हो और ऐसा पतित विचार रखते हो ! शरम नहीं आती ऐसा प्रस्ताव रखते ! मज़ाक था ? तब ठीक। शेक हैंड। शाम को कंतों से मिलूँगा और सब कुछ तुम्हें बताऊँगा। लेकिन कसम खाओ कि किसी से कहोगे नहीं। भाभी से भी नहीं। थैंक्यू कामरेड !"

"उसकी लम्बी उँगलियाँ बड़ी दुष्ट हैं। सब लोगों के सामने भी वह आँख बचा कर चुपके से चुटकी काट लेती है और इतनी जोर से कि तुम उछल पड़ो उइ राम चिल्ला कर। सब लोगों के सामने तुम कुछ कह भी नहीं सकते और वह दुष्ट चुटकियाँ काटती ही जाती है, जब तक कि उसे सिनेमा दिखाने का या बँगला मिठाई खिलाने का वादा न करो। लेकिन यह उँगलियाँ जब वह मेरे बालों या मुँह पर फेरती है तब मजा आ जाता है प्यारे ! हाँ। बहुत गुड लगता है, जैसे तितली के मधु भींगे पख छू कर चले जाएँ।

"और उसका गाना तो तुम भी सुन चुके हो मिस्टर कमरे। कितना अच्छा गाती है मेरी कंतो। तुम भी झूम-झूम उठते थे जब वह गाती थी। शास्त्रीय संगीत और लाइट म्यूजिक दोनों में पारंगत है। कई इनाम पाए हैं उसने। बी० ए० की परीक्षा में उसने संगीत भी लिया था और पास भी हुई थी प्रथम श्रेणी में। चाँदनी रात में तो उसका गाना मुझे और भी अच्छा लगता है। अनेक बार हम दोनों साथ-साथ कभी कम्पनी बाग में, कभी गंगा जी के तीर और कभी किसी सुनसान सड़क के किनारे लगे माईल-स्टोन पर बैठे हैं। आकाश में चाँद। पास के किसी बँगले से आती चमेली की सुगन्ध, हर ओर सन्नाटा। वह धीरे-धीरे गाती थी और मेरा जी चाहता था कि उसका गीत कभी खतम न हो।"

"लेकिन वह मजाक में रो देती है। जब तक दूसरे पर मज़ाक हो

हँसेगी, जोर-जोर हँसेगी। उछल कर नाचने भी लगेगी ताली बजा कर। लेकिन यदि उसके ऊपर कोई दो तीन बार लगातार मज़ाक करे तब ऊँ-ऊँ ऊँ-ऊँ कर रोने लगेगी। लाख चुप कराने पर भी चुप न होगी। कई गैलन आँसू निकाल देगी। बड़ी भोली और नाजुक है न। छुई-मुई सी। हाय-हाय मेरी कंतो ! तुझ पर वारि-वारि जाऊँ।"

"अमे सुनो मिस्टर कमरे ! तो क्या वह रोयी भी थी ? बोलो। बोलो भाई ! तुमने उसे समझाया नहीं। धीरज नहीं बँधाया। मुझे तो कमजोरी, दुख, निराशा के क्षणों में तुमने सदा सहारा दिया है, समझाया है। उसे कैसे रोते देख सके तुम। जानता हूँ। तुम भी रोए होगे। उसके साथ तुम भी फूट-फूट कर रोए होगे, मेरे दोस्त !"

"क्या कहती थी वह ? मुझे निर्दई कहती थी ? शिकायत करती थी मेरी ? तुमने उसे बतायी नहीं मेरी मजबूरी ?

कहा नहीं कि लंदन यहाँ से बहुत दूर है और वहाँ से चाह कर भी मैं उससे मिलने के लिए रोज नहीं आ सकता था। खत तो मैं बराबर भेजा करता था। देर से अगर मिला हो तो उसकी जिम्मेदारी डाकखाने पर है मुझ पर नहीं। और फिर मैं अपने मन से तो गया नहीं था। बाबू अम्मा, भाभी, भैया और खुद उसके जोर देने पर गया था। फिर वहाँ रहने पर भी तो मेरा मन हर घड़ी यहाँ उसी के आस पास डोला करता था।"

"दर्द की दवा पूछती थी ? वक्त काटने का तरीका पूछती थी ? कहा नहीं, ओ रोकर तो दिन भर काम काज मे अपने को इतना थका दिया कर कि रात में बिस्तर पर लेटते ही नींद आ जाए। मेरा ध्यान नहीं आएगा, इससे और चाँद तारे भी नहीं ताना मारेंगे तुझ पर। ऐसा न करेगी तो माटी हो जाएगी, बावली चार ही दिन में।"

"मिला दो मुझे। उससे मिला दो भाई। बहुत कृपा होगी। जिन्दगी भर एहसानमंद रहूँगा तुम्हारा। हमारी तुम्हारी दोस्ती और पक्की हो जाएगी। कंतो से मिला दो मुझे।"

बसंत ने अपनी पलकों में उलझे आँसू उँगलियों से पोंछे और उठ खड़ा हुआ। उसने एक अँगड़ाई ली और खूँटी पर टँगे कोट की जेब से सिगरेट केस और दियासलाई निकाली। एक सिगरेट जलाया, केस और दियासलाई तकिए के बगल में रख कर फिर लेट गया। दो-तीन कश लेने के बाद वह कुछ मुस्कराया और कमरे की एक-एक चीज गौर से देखने लगा।

"और कहो कामरेड कमरे ! और क्या हाल है ? तुम कुछ अजब सा हाल बनाए हो अपना। मुस्कराना चाहते हो पर एक उदासी जैसे तुम्हें रोक रही है। छत से मकड़ी के जाले लटक रहे हैं। दीवालों का प्लास्टर उखड़ रहा है। पुताई जैसे बरसों से नहीं हुई। दरवाजों की वारनिश उड़ गई है। बात क्या है ? राजू बड़ा लापरवाह है। केयर लेस। रत्ती भर सफाई का ध्यान नहीं। लेकिन फर्श तो बिल्कुल साफ है। एक तिनका तक, धूल का एक कण तक नहीं दिखायी पड़ता। यह पलंग भी बहुत ढीला हो गया है।"

वह पलंग पर बैठ गया। उसने बिस्तर उलट कर देखा। पलंग आधा निवाड़ और आधा कमजोर बाध का बिना हुआ था जिसमें जगह-जगह गाँठें पड़ी थीं। वह इन गाँठों पर हाथ फेर ही रहा था कि नीचे से राजू की आवाज सुनायी पड़ी।

"नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा। हाँ-हाँ, आज मैं स्कूल नहीं जाऊँगा। पहले फीस दो तो जाऊँ। मुझे अच्छा नहीं लगता। मास्टर साहब सब लड़कों के सामने तरह-तरह की बातें कहते हैं। कभी कहते हैं फीस नहीं है तो नाम कटा लो। कभी कहते हैं फीस के पैसे खा गया क्या ? सिनेमा देख आया होगा। लड़कों के सामने मुझे भला-बुरा कहते हैं। मैं नहीं जाता बिना फीस के। दो महीने से फीस नहीं दी है ऊपर से कहती हैं स्कूल जाओ बेटा। कपड़े भी तो गंदे हैं। लड़के हँसी उड़ाते हैं। और इस फटे जूते को तो मैं आज से नहीं पहिनूँगा। नया जूता मँगाओ नहीं तो मैं घर से बाहर नहीं जाऊँगा।"

बसंत उठ कर खिड़की के पास आ गया। नीचे दालान में राजू को

समझाते हुए अम्मा कह रही थी, "जाओ बेटा आज ऐसे ही जाओ, कल फ़ीस भी दे दूँगी, और जूता भी मँगा दूँगी। कपड़े तो अभी कोई ज्यादा गन्दे नहीं हैं।"

राजू ने मचलकर कहा, "तुम तो रोज ही कल-कल करती हो, लेकिन मँगाती कभी नहीं। मैं तो नहीं जाता।"

अम्मा ज़रा तेज़ आवाज में बोली, "अच्छा जाता है सीधे से कि बुलाऊँ सुमंत को।"

सुमंत ने ज़रा गम्भीर स्वर में कहा, "क्या बात है राजू?"

"कुछ नहीं बड़े भैया, जा तो रहा हूँ स्कूल" कहता हुआ राजू, आँखें झुकाए बाहर जाने लगा। बसंत ने खिड़की से देखा कि राजू के बाल बिखरे हैं, कपड़े बहुत गन्दे हैं। सफेद कमीज़ का कपड़ा बहुत पुराना होने के कारण पीला पड़ गया है। कालर फट गया है और उस पर मैल की एक लम्बी मोटी लकीर पड़ी है। नीले नेकर का रंग उड़ चुका है। सफेद कपड़े के जूते का तल्ला घिस गया है और आगे की ओर वह बिल्कुल खुल गया है। राजू के पैर की उंगलियाँ साफ़ दिखायी पड़ती हैं। स्कूल जाते हुए राजू के मुख पर ऐसा भाव था मानो वह किसी बधिक के घर जा रहा हो।

"राजू" उसने आवाज़ दी। राजू बाहर जा चुका था।

"क्या बात है बसंत" अम्मा ने पूछा।

"कुछ नहीं, ऐसे ही" कहकर वह कमरे में टहलने लगा।

राजू का इस तरह स्कूल जाना उसे अच्छा नहीं लगा था। उसे अम्मा पर थोड़ा सा गुस्सा भी आ गया। "क्यों नहीं धुले कपड़े दिए? फीस क्यों नहीं दी? वह जूता पहिनने के लायक है? कूड़े में फेंक देना चाहिए उसे। ठीक तो कहता था राजू। शाम को उसे नया जूता ला दूँगा।"

बिस्तर अब भी उलटा हुआ था। थोड़ी देर बाद बसंत की दृष्टि एक गाँठ पर पड़ी।

"भूल ही गया था। इस पलंग की आधी निवाड़ कहाँ गई? धुलने के लिए तो धोबी को पूरे पलंग की निवाड़ एक साथ दी जाती है। फिर? टूट

गई थी या खराब हो गई थी तो दूसरी लग सकती थी। यह बाध तो बड़ा भद्दा है और गड़ता भी काफी होगा।

टहलते-टहलते उसकी दृष्टि दीवारों पर लगी दो चार तस्वीरों पर पड़ी।

"इन तस्वीरों का शीशा चटका है। इसमें तो शीशा ही नहीं है। और इसका एक तरफ का फ्रेम कहाँ गया। यह तस्वीर तो बिलकुल चौपट हो गई, न फ्रेम न शीशा।"

"और कोने में रखी यह आलमारी। इसका एक पल्ला तो जैसे गिरने वाला है तीन पेंच गायब। तभी। इसके अन्दर रखे सामान की भी अजब हालत हो गई है। यह चाँदी के कप यह मेडल, ताश, गुलदस्ते, किताबें, कापियाँ, टेनिस रैकेट सभी जैसे पुराने से पड़ गए हैं। नीचे वाले खाने का सामान कहाँ गया?

कपड़े तो बहुत कम हो गए हैं?"

थोड़ी देर तक टहलने के बाद वह मेज के बगल में रखी कुर्सी पर बैठने के लिए झुका। कुर्सी पर बैठते ही वह उसमें जैसे धँस सा गया। सहारे के लिए उसने मेज थामी। जैसे ही उसने मेज पर जोर देकर उठना चाहा वह भी एक ओर झूल सी गई। खड़े होने पर उसने देखा कि कुर्सी का बेंत बीच से बिल्कुल टूटा है। मेज का भी एक पाया गायब है। लम्बाई में तीन ईंटे एक के ऊपर एक रख कर पाए का काम चलाया गया है। ईंटें लगा कर उसने मेज फिर खड़ी की।

"तो यह कुर्सी मेज भी टूटी हैं? बहुत गंदा मेजपोश बिछा है इस मेज पर। दावात मे स्याही नहीं है। होल्डर की निब टेढ़ी हो गई है। किताबें भी बहुत कम हैं। राजू तो नवें दर्जे में पढ़ता है। नवें क्लास में तो काफी किताबें पढ़ायी जाती हैं। लगभग सोलह किताबें होंगी। पर मेज पर तो केवल तीन हैं। और यह किताबें भी बहुत गंदी हैं।

सेकेंड हैंड बुक डिपो की मुहर। तो यह पुरानी हैं।

न जाने किस गंदे बीमार या बद दिमाग लड़के ने पढ़ा होगा इन्हें पहले। अब इन्हें राजू पढ़ रहा है।"

उसकी परेशानी बढ़ती जा रही थी। कमरे का दो-तीन चक्कर लगाने

के बाद वह बाहर चला आया और सीढ़ी की रेलिंग पकड़ कर खड़ा हो गया। घर का काफी हिस्सा यहाँ से दिखायी पड़ता है।

"यह रेलिंग भी काफी कमजोर हो गई है। कई जगह टूट भी गई है। कोई छोटा बच्चा नीचे गिर सकता है वहाँ से तो। कुँवर ही न गिर पड़े किसी दिन। इसकी तो मरम्मत होनी चाहिए।"

वह धीरे धीरे कुछ सोचता हुआ नीचे उतरने लगा। बदबू का एक तेज झोंका आया। उसने जेब से रुमाल निकाल कर नाक बंद कर ली।

"शौचालय फिनायल से नहीं धोया जाता क्या? कच्ची गंदी नाली। धुलने पर भी मिट्टी में तो गन्दगी रहेगी ही। फिर कीटाणु, बीमारी, मृत्यु।"

आँगन में पहुँच कर उसने एक नजर चारों ओर फेंकी और रसोईं के दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया। अम्मा तारा और मीना खाना बना रही थीं।

"क्या बना रही हो अम्मा" उसने धीरे से कहा।

"अरे तू! तू कब आकर यहाँ खड़ा हो गया" अम्मा ने बटलोई में करछुल घुमाते हुए कहा।

"रसोईं में तो काफी अँधेरा है अम्मा। घर के दूसरे हिस्सों में भी धुआँ फैल रहा है। यह तो स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक है।"

"आज से ही डाक्टरी शुरू कर दी क्या" तारा ने परिहास किया जिसे सुनकर अम्मा हँस पड़ीं। बसंत ने कुछ झेंपकर कहा, "नहीं। यह बात नहीं। मैंने तो वैसे ही कहा था। लेकिन रसोईं के ऊपर की यह खपरैले तो लगभग सभी टूट गई हैं। बरसात में तो इनसे पानी चूता होगा! तुम लोग खाना कैसे बनाती थीं इसमें।"

"सावन की बौछार का मजा लेते हुए" तारा ने मुस्करा कर कहा और एक नजर बसंत की ओर फेंकी।

"पिया घर आ जा" गाते हुए मीना बोली।

"चुप रह।" अम्मा ने डाँटा और चूल्हे से उतार कर बटलोई जमीन पर रख दी। बसंत को लगा कि बात हँस कर उड़ा दी गई। वह फिर

आँगन की ओर चला। उसकी दृष्टि गुसलखाने के दरवाजे पर लटकते एक टाट के परदे पर पड़ी।

"गुसलखाने का दरवाजा क्या हुआ ? टाट का पर्दा पड़ा हुआ है इस पर और वह भी कई जगह से फटा। अम्मा, भाभी, बीना कैसे नहाती होंगी इसमें ! परदा गिरा रहने पर भी तो बेपर्दगी होती है। गुसलखाने का भीतरी भाग दिखायी पड़ता है।"

"यह सामने आँगन के उस कोने में कैसा ढेर है ? टूटी कुर्सियाँ, टूटी मेजें, तिपाइयाँ, टूटे सन्दूक, पुराने अखबार, टूटी लालटेनें, फटे कपड़े, फटे तकिए, चारपाई का टूटा बाध, सिगरेट के डिब्बे, और भी बहुत सा सामान पड़ा है। भैया की सायकिल भी है। इसके टायर ट्यूब कहाँ गए ? चैन कहाँ गई ? पैडिल भी नदारद। हैंडिल पर जंग लग गया है।

"भैया ! ओ भैया" आवाज देता हुआ वह सुमंत के कमरे की ओर चला।

"क्या है ?" सुमंत ने अपने कमरे से पूछा।

दरवाजे पर जाकर उसने देखा कि सुमंत नंगे बदन सिर्फ एक जाँघिया पहिने शेव कर रहा है। दुबला पतला। माँस का नाम नहीं। पतले-पतले हाथ-पैर। धँसा पेट। कमान सी रीढ़, पिचके कनस्टर सा सीना। बदन की हर हड्डी साफ दिखायी पड़ती थी। गढ़े में धँसी आँखें। काफी पिचके गाल। बहुत कमजोर मालूम पड़ता था वह। सुमंत का यह हाल देखकर वह चौंक सा पड़ा। उसने घबरा कर कहा "भैया आप तो बहुत दुबले हो गए हैं ?"

"नहीं तो" सुमंत ने उत्तर दिया, "तुम इतने दिन बाद आए हो तभी तुम्हें ऐसा लग रहा है। मैं तो अब भी वैसा ही हट्टा-कट्टा हूँ।"

"और आपकी साइकिल भी बिल्कुल टूट गई है ?" उसने फिर पूछा।

"हाँ एक-एक चीज उसकी टूटती गई। बनवाने की नौबत ही नहीं आयी। बिना साइकिल के भी काम चल ही जाता है।" सुमंत फीकी हँसी हँसा।

इस हँसी के पीछे काफी दर्द है यह वह समझ गया। वह थोड़ी देर तक

दरवाजे के सामने खड़ा रहा। उसने देखा कि इस कमरे का भी वही हाल है जो ऊपर वाले का था। मकड़ी के जाले। दीवारों का उखड़ा प्लास्टर। बिस्तरों पर चादरें नहीं। तकियों के गिलाफ गंदे। रजाइयाँ फटी हुई। खूँटियों पर टँगे दो तीन गंदे कपड़े। तारा की ड्रेसिंग टेबिल का शीशा टूटा। क्रीम पाउडर के पुराने खाली डिब्बे, कंघे के अनेकों दाँत टूटे हुए। संदूक का ढक्कन अलग-पुराने जूते जिन पर शायद सालों से पौलिश नहीं हुई। कुर्सी का हत्था टूटा। "भाभी और भैया की शादी वाली तस्वीर का यह हाल! धूल जम गई है। शीशा न होने के कारण चोपट हो गई है यह तो। और दीवार पर यह कलैण्डर तो पुराना टँगा है दो साल पुराना। आज तो ६ फरवरी १९५३ है।"

सुमंत के कमरे से जब बसंत फिर आँगन की ओर चला तो उसकी बढ़ती हुई परेशानियों के साथ मन के किसी कोने से दर्द की भी एक घटा उमड़ने लगती थी। आँगन के बीच पहुँच कर उसने देखा कि हरसिंगार के पेड़ में फूल नहीं हैं। तख्त पर बिछी दरी के किनारे से फुचड़े निकल रहे हैं तथा उस पर रखा बड़ा गोल तकिया तेल लगने के कारण काला पड़ गया है। आँगन की कच्ची जमीन पर कई छोटे-बड़े गढ़े हो गए हैं और दीवार पर काई जमी हुई है। एक दीवार पर हलकी-हलकी घास उगने लगी है।

आँगन पार करता हुआ वह धीरे-धीरे अम्मा की कमरे की ओर चला। उसे दालान पर खूँटी पर एक पुराना सूप, तारा के विवाह की एक पिटारी जिस पर बने चित्र धूमिल पड़ गए थे और एक फटी ढोलक टँगी दिखायी पड़ी। कमरे के अन्दर प्रवेश कर उसने देखा कि एक चारपाई पर कम्बल से मुँह ढाँके कोई लेटा है।

"कौन लेटा है यह, कुँवर!" उसने पूछा।

"नहीं मैं हूँ बीना।"

"क्यों पड़ी है रे सबेरे-सबेरे। तबियत खराब है क्या।" उसने कुछ चिन्ता से पूछा।

"नहीं। ऐसे ही पड़ी हूँ। अम्मा ने कहा कि आज का काम काज मुझे नहीं करने दिया जाएगा। तुम्हारे आने की खुशी में मेरी छुट्टी है, तो छुट्टी मना रही हूँ। दिन भर आराम करूँगी।"

बहिन की बात सुन कर वह कुछ प्रसन्न हो गया क्षणिक चिंता दूर हो गई। किन्तु उसने कहा, "लेकिन मुँह ढाँक कर क्यों लेटी है। आराम करना है तो बाहर धूप में लेट।"

कमरे के बाहर निकलते समय उसने देखा कि कोने में रखी कपड़ा सीने की मशीन के पास छोटे-बड़े सिले अधसिले कपड़ों का एक ढेर पड़ा है। दूसरी ओर एक के ऊपर एक कर सात-आठ सन्दूक रखे गए हैं जो हल्का धक्का लगने पर भी भरभरा कर गिर सकते हैं। एक आल्मारी में बहुत सी किताबें ठूँस-ठूँस कर रखी हुई हैं। दूसरी में छोटी बड़ी बोतलें, शीशियाँ, डिब्बे, चूड़ियाँ, सिन्दूर की डिबिया, लकड़ी की कंघियाँ, पुरानी तस्वीरें, धोती के किनारे, पुराने ऊन के गोले, सलाइयाँ, बटन, कैंची, शेविंग सेट जिसके ब्रुश के बाल आधे से अधिक झड़ चुके हैं, शतरंज के मोहरें, शीशे के दो चिटके गिलास, मुरादाबादी थालियाँ कटोरे, गिलास जिनकी कलई उड़ गई है, मिट्टी के खिलौने आदि बहुत सी चीजें रखी गई हैं। दो तीन घड़े और आठ दस कनस्टर भी एक ओर रखे हैं। पास ही एक चौकी पर लक्ष्मी गणेश, राधा-कृष्ण, सीता-राम, हनुमान, महादेव-पार्वती की मूर्त्तियाँ है जिनके सामने कुछ सूखे फल, चंदन, ताँबे का छोटा सा पंचपात्र, पीतल की घंटी, पुरानी, हवनकुंड, माला, भागवत, रामायण, गीता और हनुमान चालीसा की प्रतियाँ रखी हैं यह अम्मा की पूजा की चौकी है। इसके पास तीन खूँटियों पर अम्मा बीना और बाबू के कपड़े टँगे हैं। बाबू की टोपी मैल से काली हो गई है। अम्मा का पानदान खुला हुआ है जिसकी चूना कत्था की डिबियों में कुछ चूना और कत्था सूखा हुआ दिखायी पड़ रहा है। सुपारी की डिबिया खाली है। पान का लच्छा नीचे पड़ा है। शायद पान नहीं है। कमरे के बीच दो चारपाइयाँ पड़ी हैं। एक पर बीना लेटी है। दूसरी जो अम्मा की शायद है खाली है। अम्मा की चारपाई पर तकिया और

गद्दा नहीं है केवल दरी बिछी है और पैताने एक पुरानी रजाई रखी है।

कमरे से बाहर निकलकर उसे लगा कि कमरा छोटा है और उसमें जरूरत से ज्यादा सामान भर दिया गया है। उसे हवा की कुछ कमी सी मालूम पड़ी, दम घुटता सा लगा। वह कुछ घबराने सा लगा। एक दृष्टि आँगन की ओर फेंक वह घर से बाहर की ओर चल पड़ा। गलियारे में काफी अँधेरा था। बाहर निकलते समय गलियारे के दरवाजे की चौखट से एक ठोकर लगी उसके पैर के अँगूठे में। कराहकर उसने अँगूठे को उँगलियों से दबाया और लँगड़ाता हुआ बाहर निकला। बाहर के आँगन में पहुँचकर वह केले के पेड़ों की छाया में बैठ गया। मास्टर साहब के कमरे की खिड़की खुली थी। लेकिन जैसे किसी चीज से डर कर उसने अपनी दृष्टि उस ओर से बलपूर्वक हटा ली कमरे के अन्दर देखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। जेब से सिगरट केस और दियासलाई निकाल कर उसने एक सिगरेट जलायी और सामने लगे गुलाब के पेड़ों और लताओं को देखने लगा।

"तो यह लता और ये पेड़ भी सूख गए हैं। फाटक का पेण्ट उड़ गया है। खम्भा ऊपर से टूट गया है। वह टूटे हुए खम्भे की ओर देख ही रहा था कि उसे घर के अन्दर से सुमंत के चीखने चिल्लाने की आवाज सुनायी पड़ी। सुमंत का स्वर क्रमशः तेज होता जा रहा था। वह कह रहा था "आटा नहीं है, घी नहीं है, नमक, तेल, लकड़ी नहीं है, तो मैं क्या करूँ। मैंने तो सारी तनख्वाह पहली तारीख को तुम लोगों को सौंप दी थी। अपने पास कुछ बचा कर रख नहीं लिया था जो निकाल कर दे दूँ। चार दिन पहले मैं सब सामान खुद लाया था। आज सब खतम हो गया। इतनी जल्दी कैसे खतम हो गया? क्या किया? फेंक दिया? आग लगा दी? कितना खाते हो तुम लोग?"

"बिगड़ो नहीं बेटा" अम्मा ने कहा, "हर चीज इतनी कम आयी थी कि खतम हो गई। अब इन्तजाम तो करना ही पड़ेगा। चिल्लाने से तो काम नहीं चलेगा।"

"मेरे मान का नहीं। किस-किस चीज का प्रबन्ध करूँ। तुम लोगों का जो जी चाहे करो। जहाँ तक मेरी बात है, मैं इस समय खाना नहीं खाऊँगा।"

"अरे सुन तो। सुमंत !" अम्मा ने पुकारा। अम्मा की आवाज अभी गूँज ही रही थी कि सुमंत तेज कदम रखता हुआ बाहर आया और फाटक खोल कर सड़क की भीड़ में खो गया।

"गया। आज भी बिना खाए दफ़्तर चला गया" घर के अन्दर अम्मा ने कहा।

बसंत ने बाएँ हाथ की उँगलियों से अपना माथा दबा लिया। आँखें जमीन में उगी घास पर जमा दी। दाहिने हाथ की उँगलियों से छूट कर सिगरेट जमीन पर गिर पड़ी। रह-रह कर उसके मन को जैसे कोई बढ़े नाखूनों से कुरेद देता है। रह रह कर उसकी आँखों में घर का कोना-कोना नाच उठता है। उसका कमरा, दीवारों का उधड़ा प्लास्टर, टूटी मेजें, टूटी कुर्सी, टूटी तस्वीरें, गुसलखाने का फटा पर्दा, गन्दा बिस्तर, काली नाली, जर्म्स, बीमारी, रसोई से उठता धुआँ, पुराने जूते, क्रीम की खाली शीशी, पाउडर का खाली डिब्बा, तारा सुमंत की चौपट तस्वीर, आँगन में कूड़े का ढेर, टूटी सायकिल, अँधियारा गलियारा, अम्मा का कमरा, बाबू के कमरे के खिड़की, सूखे पेड़, फाटक का पेएट। रह-रहकर एक बात उठती है। पहले तो यह घर ऐसा नहीं था। एक प्रश्न उठता है। अब इसकी यह हालत क्यों हो गई है ? कैसे हो गई है ? कब हो गई है ? किसने कर दी ? सोचने पर भी जवाब नहीं मिल रहा है उसे।

वह किसी से पूछना चाहता है ये प्रश्न। इस घर के बारे में। लेकिन किससे पूछे। कौन बताएगा ? कौन ?

"चाचाजी पानी गरम है। नहाने चलिए" कुँवर ने उसे हिलाते हुए कहा।

"अरे तू है" उसने जैसे जागते हुए कहा।

"नहाने चलिए" कुँवर ने फिर दुहराया।

"अच्छा चल" कह कर उसने कुँवर को गोद में उठा लिया और अन्दर चला। कुँवर केवल एक बनियाइन पहने था।

"अरे तू तो नंगा है।" बसंत उसे गुदगुदा कर बोला। कुँवर ने उसके कंधे पर मुख छिपा कर धीरे से कहा, "जाँघिया एक ही तो है मेरे पास, मम्मी ने धोकर सूखने के लिए फैला दिया है उसे।"

एक हथौड़ा सा पड़ा बसंत के माथे पर यह सुन कर। कुँवर को उसने कस कर छाती से चिपका लिया और धीरे-धीरे कदम रखता अन्दर पहुँचा। तारा की आवाज आयी, "तुम्हारे कपड़े गुसलखाने में रखे हैं। गर्म पानी भी वहीं है। जाओ नहा लो फिर खाओ-पिओ काफी देर हो गई है।"

कुँवर को गोद से उतार कर, बिना तारा की ओर देखे वह गुसलखाने की ओर चला।

४

अपने कमरे की खिड़की से आँगन की ओर देख कर बसंत ने पुकारा, "भाभी ! ओ भाभी !"

"क्या है" आँगन में बँधी एक अरगनी से सूखे कपड़े उतारते हुए तारा बोली।

"जरा काम-धाम खतम कर यहाँ आना। तुम जैसे मुझे बिल्कुल भूल गई। इतनी देर मुझे आए हो गई और तुम हो कि मुझसे बात तक नहीं करना चाहतीं" उसने मुस्करा कर किंचित् रोष प्रकट करते हुए रूठते स्वर में कहा।

"ओहो यह बात है ! डाक्टर साहब के सिर में दर्द हो रहा है। लेकिन मेरी उँगलियाँ फायदा नहीं पहुँचाएँगी। एलबर्ट रोड पर रहने वाली उँगलियाँ चाहिए तुम्हें तो। खैर आती हूँ थोड़ी देर में।" तारा ने संकेत में यह कंतो को लेकर जो मजाक किया उससे बसंत कुछ झेंप गया। उसने खिड़की बंद कर दी। आँगन से तारा की मधुर हँसी की ध्वनि आयी, कंतो की सुगन्ध लिए बसंत अपने को भूल गया। लेकिन उतनी ही देर के लिए जब तक कि हँसी की आवाज उसे सुनायी पड़ती रही। इस आवाज के खोते ही वह फिर पूर्ववत् हो गया। पलंग पर लेट कर उसने एक सिगरेट जलायी और छत की ओर देखने लगा।

उसके माथे पर चिंता की कुछ रेखाएँ बन बिगड़ रही हैं। मन भारी है। छाती से एक तकिया उसने जोर से चिपटा रखी है।

उसकी आँखों के आगे रह, रह कर घूम जाती है गुसलखाने की सीलन से गीली दीवार, फटा टाट का पर्दा, नहाने की चौकी के किनारे से जमी काई और गंदी नाली में बिजबिजाते कीड़े ! गुसलखाने में प्रवेश करते ही उसका जी मचलाने लगा था। रोक-रोक कर धीरे धीरे साँस लेकर शायद वह दो-तीन मिनट में ही नहा चुका था। साबुन लगाना वह भूल गया

था। जल्दबाजी में बदन पर कहीं पानी पड़ा था कहीं नहीं। कुर्त्ता पाजामा पहिन कर गुसलखाने से बाहर निकलते-निकलते उसे कै हो गई थी।

सिर थाम कर वह आँगन में हरसिंगार के पेड़ के नीचे बैठ गया था कुछ देर ठंढी हवा लगने के बाद वह ठीक हुआ था। तभी अम्मा की आवाज़ आयी थी, "खाना तैयार है बेटा!"

"भूख नहीं है अम्मा" उसने धीरे से कहा था।

"क्या ? आज ही घर आया और आज ही भूख नहीं।" अम्मा कुछ दर्द और कुछ आश्चर्य से बोली।

"अच्छा भेज दो यहीं।"

"वहाँ कहाँ भेज दूँ। यहीं आ जा चौके में। मैं गरम-गरम परसती जाऊँगी। लंदन जा कर भूल गया क्या रे चौके में खाना। पहले तो धड़धड़ाता चूल्हे के पास आ कर बैठ जाता था और बिना पकी रोटी तवे पर से उतार कर खा जाता था।"

अम्मा के इस कथन का उत्तर उसके पास नहीं था। लगा मानो उसने कोई पाप कर दिया हो अनजाने में।

"नहीं। यह बात नहीं है अम्मा" उसने प्रयास करने के बाद कहा था। चौके में जा कर दरवाजे के पास बैठ गया था काठ के पटरे पर। दरवाजे से आगे चाहने पर भी वह नहीं जा सका था। रसोई में दिन में भी काफी अँधेरा था। दीवारें धुएँ से काली हो गई थीं। अम्मा बार-बार चूल्हा फूँकती थीं और धोती से धुएँ के कारण आँख से निकलते पानी को पोंछती जाती थीं। तारा पूड़ियाँ बेल रही थी।

"सँडसी के दोनों टुकड़े अलग! करछुल टूटी, बीच में लोहे के तार से बाँधी गई। तवे में, बीच का लोहा घिस जाने के कारण अनेक छेद! थालियों की कलई गायब। कटोरे गिलास पिचके। कड़ाही का एक हैंडिल टूटा! बर्त्तन तो बहुत कम दिखायी पड़ रहे हैं? और कहाँ गए?" वह सोच ही रहा था कि—

"क्या सोच रहे हैं चाचा जी" मीना ने उसके पास पानी का लोटा और गिलास रखते हुए कहा था।

"कुछ नहीं बेटी। कुछ नहीं।" उसने चौंक कर उत्तर दिया था। मीना ने मुँह फेर कर तारा की ओर देखा था। माँ बेटी मुस्करा उठी थीं। कोई गलत बात कह दी क्या? उसने सोचा था। बात बदलते हुए उसने कहा था, "तेरा यह फ्राक तो बहुत सुन्दर है मीना! किसने बनवाया है? मीना ने घबरा कर मुँह फेर लिया था।

बहुत सुन्दर है! इन शब्दों ने जैसे उसी के ऊपर व्यंग किया था। क्योंकि उसने देखा था कि मीना की फ्राक कम से कम तीन वर्ष पुरानी थी। कपड़े पर बने लाल फूलों का रंग धुँधला पड़ चुका था। बटन की जगह डोरे के टाँके लगे थे। आस्तीन के पास कपड़ा फट गया था।

उसने यह भी देखा था कि मीना के रूखे बालों में शायद महीनों से तेल नहीं पड़ा था। मीना के बाल चोटी या फीते की जगह धोती के एक पुराने किनारे से बाँधे गए थे। मीना के बाल जो कभी रेशम की लच्छियों की तरह थे। जो रूपहले गोटे से बाँधे जाते थे। मोती की लड़ियों के साथ।

मीना की ओर से बरबस ध्यान हटाते हुए उसने पूछा था, "और लोग कहाँ हैं?"

"राजू को स्कूल जाना था इसलिए वह पहले ही खा चुका" तारा ने उत्तर दिया था "आपके भैया दफ्तर, और बाबू कुछ सामान खरीदने बाजार गए हैं। पता नहीं कब लौटें। बीना सो रही है। मीना और कुँवर भी खा चुके हैं। मैं अम्मा जी के साथ बाद में खाऊँगी।"

तारा का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही उसकी दृष्टि अम्मा के पास रखी एक थाली पर पड़ी थी जिसमें कुछ मोटी-मोटी रोटियाँ रखी थीं। एक बटलोई के मुँह पर, किनारे-किनारे, पीला-पीला कोई पदार्थ दिखायी पड़ रहा था। शायद उसमें दाल बनी थी। एक प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठा था। क्या दो तरह का खाना बना है? एक विशेष, केवल उसके लिए। दूसरा साधारण, शेष घरवालों के लिए।

तभी अम्मा ने कहा था, "थाली परसी है बेटा"

"शुरू करिए डाक्टर साहब" मुस्कुरा कर तारा बोली।

उसने थाली की ओर दृष्टि फेंकी। पूड़ी, पापड़, आलू मटर की रसेदार और आलू बैंगन की सूखी तरकारी, आलू मटर की तहरी और खीर। ये सभी चीजें उसे बहुत पसन्द थीं। कालेज के दिनों में वह अम्मा से जब तब इन्हें बनाने का अनुरोध किया करता था।

अम्मा उसकी ओर बहुत स्नेह से देख रही थीं। उसने बिना कुछ बोले चुपचाप खाना शुरू किया था। थोड़ी देर बाद जैसे उसे कुछ याद सा आ गया था और उसने बलात् ओठों पर एक मुस्कान लाकर कहा था, "अम्मा यह तरकारी बहुत अच्छी बनायी है। और यह तहरी तो इतनी बढ़िया बनी है कि जी चाहता है बस खाता जाऊँ।"

"अरे तो खाता क्यों नहीं रे" अम्मा पुलक कर बोली थीं।

कई बार इसी प्रकार उसने थाली में परसी गई हर चीज की तारीफ की थी। हर बार अम्मा दूने प्रेम और उत्साह से परसती थीं। भूख न रहने पर भी उसने जान बूझ कर जरूरत से ज्यादा खा लिया था। इस डर से कि अम्मा यह न समझ लें कि उसे खाना पसन्द नहीं आया।

उसके साथ कुँवर भी खाने बैठ गया था। कुँवर हर चीज़ इतना स्वाद लेकर और जीभ चटकार कर खा रहा था मानो उसे इतना बढ़िया खाना बहुत दिनों बाद मिला हो।

खाना खाने के बाद वह हाथ मुँह धोकर अपने कमरे की ओर जाने लगा था कि उसे कुँवर की आवाज सुनायी पड़ी थी "ममी। मेरे लिए खीर रख देना। पूड़ी और तहरी भी, मैं शाम को फिर खाऊँगा।"

उसने कुँवर की ओर देखा था। कुँवर का पेट उसे कुछ बड़ा मालूम पड़ा था। क्या बात है उसने सोचा था। जिगर तो नहीं बढ़ गया इसका? उसने एक बार फिर कुँवर की ओर देखा था और सीढ़ियों पर चढ़ने लगा था।

कमरे में पहुँच कर वह पलंग पर लेट गया था। सिर तक कम्बल खींच कर। आँखें बंद कर, बदन ढीला कर, दिमाग से हर विचार बरबस निकाल, कई बार उसने सोने की कोशिश की थी। कई बार करवट बदली थी। खिड़की

दरवाजा बंद कर कमरे में हल्का अँधेरा तक किया था। किन्तु नींद नहीं आयी थी। तबियत ऊब सी रही थी। एक घंटे तक इसी प्रकार पड़े रहने के बाद उसने तारा को पुकारा था और उसका उत्तर पाकर फिर लेट गया था, प्रतीक्षा में।

छाती से तकिया चिपटाए, छत की ओर देखता हुआ वह इसी तरह लेटा है। दिमाग में रह-रह कर एक प्रश्न उठता है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कोई पूछता है "यह सब क्यों ?" "यह सब क्यों ?"

ठक ! ठक ! ठक ! ठक ! कोई रुक-रुक कर सिर पर आघात करता है क्यों ? क्यों ? क्यों ? क्यों ?

बालों में किसी की उँगलियों का स्पर्श पा उसने छत से दृष्टि हटायी और "ऐसे न देखो भाभी" वह छेड़ता हुआ बोला, "भैया का दिल दफ्तर में डोल उठेगा।"

"खैर, तुम अपने दिल को सम्हालो जो एलबर्ट रोड में डोल रहा है इस समय। देखना कहीं काँटों में न फँस जाए। कली तो बहुत सुन्दर है वह। जुही है या चमेली ?" तारा ने कहा और कुछ झेंपते हुए वह बोला, "अरे तुम कौन कम सुन्दर हो भाभी। अच्छा बैठो तो।"

पलंग पर एक किनारे तारा के बैठ जाने पर उसने देखा। तारा को गौर से देखा। हाथों में सोने की जगह पीतल की चूड़ियाँ हैं। वह बहुत मोटी काले किनारे वाली सफेद धोती पहिने है जिसे पहले शादी ब्याह, तीज, त्यौहार में नौकरानियों को दिया जाता था। माँग में सिन्दूर की हल्की सी रेखा। शायद कुछ दिन पहले लगाया गया है। नंगे पैर चलने के कारण पैर के तलवे में तथा चौका बर्त्तन करने से हथेलियों में अनेक टेढ़ी-मेढ़ी काली रेखाएँ आँखों के नीचे कालिमा, बदन पीला। "एनीमिया ! खून नहीं बनता। खून बनना बंद। खून नहीं बनेगा ?" तारा की ओर से दृष्टि हटाते हुए वह बोला, "और कहो भाभी !"

तारा मौन रही।

"बहुत दिन बाद मिले हैं" उसने एक साँस लेकर कहा—

"हाँ" तारा ने छोटा सा उत्तर दिया।

"क्या हाल चाल है"

"तुम अपना सुनाओ।"

"मैं ? मैं क्या सुनाऊँ भाभी !"

"पाँच साल में क्या-क्या किया। कैसे रहे। कहाँ-कहाँ गए। लंदन कैसा है। वहाँ के रहने वाले कैसे हैं ? कितनी लड़कियों से दोस्ती की ?" तारा ने कहा और एक अँगड़ाई ली।

"लंदन तो मैं बिल्कुल भूल गया हूँ यहाँ आकर। वहाँ के बारे में किसी दूसरे दिन विस्तार से बताऊँगा। लंबी कहानी है। तुम पहले यहाँ की बात बताओ। यहाँ का क्या हाल है ?" उसने तारा की हथेली पर पड़ी रेखाएँ देखते हुए कहा।

तारा ने थोड़ी देर के बाद कहा "यहाँ सब ठीक है। इतने दिन बाद तुम आये, यही नया रहा और कुछ नहीं। बहुत छोटी सी, बस इतनी ही कहानी है यहाँ की तो।"

बसंत ने एक सिगरेट जलायी और दो चार कश लेने के बाद बहुत दर्द से कहा—

"भाभी ! इस घर को क्या हो गया है ? यह घर बदल गया है। अब यह हमारा वह छोटा सा सुन्दर पुराना घर नहीं रहा, जिसे मैं छोड़ कर गया था।"

"कुछ तो नहीं हुआ है। घर तो अब भी वही है।" तारा जल्दी से बोली।

"नहीं घर वह नहीं रहा, और तुम लोग भी वह नहीं रहे। तुम सभी बदल गए हो" उतनी ही तेजी से वह बोला।

तारा उसे फुसलाते हुए कुछ देर बाद बोली, "तुम इतने दिनों के बाद आए हो तभी तुम्हें ऐसा लग रहा है। यह घर अब भी वही है। हम लोग भी वही हैं।"

"वही नहीं !" उसने एक-एक शब्द पर जोर देकर कहा—

"यह घर वह नहीं रहा। तुम लोग वह नहीं रहे।"

मैं तुम लोगों को किस हालत में छोड़ गया था और आज किस रूप में पा रहा हूँ !"

"तुमने एक पत्र में लिखा था कि तुम्हारी जेनी नाम की एक लड़की से दोस्ती हो गई है। तुम्हारी यह घड़ी बहुत अच्छी है। उसी ने भेंट की है क्या ?" तारा ने बात बदलते हुए कहा।

"नहीं जेनी ने नहीं दी है।" छोटा सा उत्तर देकर वह विचारों की पहली धारा में ही बहता हुआ कहने लगा, "तुम कहती हो यह घर वही है। लेकिन यह टूटी मेज, यह टूटी कुर्सी और दीवारों का उधड़ा प्लास्टर एक दूसरी ही कहानी कह रहे हैं। मकड़ी के जाले, तस्वीरों के फूटे शीशे, पहले तो यहाँ नहीं दिखायी पड़ते थे ? दरवाजों की वारनिश उड़ गई है। दीवारों पर पुताई बरसों से नहीं हुई। गुसलखाने का दरवाजा कहाँ गया भाभी ? नाली में लाखों बदसूरत घिनौने कीड़े बिजबिजा रहे हैं। इन नालियों में कितने दिनों से फिनाइल नहीं पड़ी, तकिए गंदे चीकट। रजाइयाँ फटी गूदड़। बिस्तरों पर चादर नहीं। पहले भी यही हाल था ? क्रीम पाउडर के डिब्बे शीशियाँ खाली हैं। कुँवर के पास कितने जाँघिए हैं भाभी ?

मीना के पास कितनी फ्राकें हैं ? कितने दिनों से उसके सिर में तेल नहीं पड़ा है ?

"बसंत !" घबराई हुई तारा ने जैसे उसको आवाज रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा लेकिन बसंत ने पहले से अधिक तेज और काँपती आवाज में पूछा, "तुम्हारे हाथ की सोने की चूड़ियाँ कहाँ हैं भाभी !" सवाल पूरा होने के पहले ही एक दबी चीख तारा के कंठ से निकल गई। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपने को सम्हाल लिया। उलाहना सी देती वह बोली, "तुम बड़े निर्दयी हो ! कंतो के यहाँ अभी तक नहीं गए। जाओ उससे मिल आओ। तुम्हारे इन्तजार में बैठी होगी। बड़ी अच्छी लड़की है।" लेकिन इन शब्दों में जान न थी, यह स्वयं उसने अनुभव किया।

"बात न बदलो भाभी। मेरे सवालों का जवाब दो ?" बसंत ने रुक-रुक कर, धीरे-धीरे, गम्भीर आवाज में बोलना शुरू किया, "कहाँ हैं सोने की चूड़ियाँ, जिन्हें लाखों मंगल कामनाओं के साथ तुम्हारी माँ ने तुम्हें दिया था, तुम्हारे विवाह में—घर से डोली विदा करते समय। नहीं बताओगी। न बताओ। जाने

दो। जवाब मिल गया!" यह कह कर वह एक फीकी हँसी हँसा जिसका जोड़-जोड़ कराह रहा था और जो उसके गोरे मुख पर कोहरा बन कर छा गई।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने फिर कहना शुरू किया, "घर ही नहीं तुम सब भी बदल गए हो। तुम्हारा रूप रंग बदल गया है! स्वभाव बदल गया है। सब कुछ खतम सा हो गया है तुम्हारा। चलते हो तो लगता है कंधे पर बहुत बड़ा बोझ रखा है। बात करते हो, ऐसे मानो अन्तर में बहुत बड़ा दर्द का समुद्र लहर ले रहा है। देखते हो इस तरह जैसे दुनिया में अब देखने लायक कुछ भी नहीं बचा है।"

"यही नहीं, मुस्कराते हो तो लगता है पत्थर की मूरत मुस्करा रही है। काम करते हो तो लोहे की मशीन की तरह। जैसे उस काम के आरम्भ के उल्लास से मध्य की उमंग से और अंत के फल से तुम्हारा कोई सम्बंध न हो।"

"क्या तुम सब पहले भी ऐसे थे?" प्रश्न सुनकर तारा मौन रही। उसने एक बार बसंत से आँखें मिला कर निगाहें नीची कर लीं जैसे कोई बच्चा चोरी करते समय रंगे हाथ पकड़ लिया जाए। बसंत खोया-खोया सा कहता गया, "अम्मा अब दिन में भी पास ही रखी चीज़ को इस तरह देखती हैं मानो उनकी आँखों की रोशनी खतम हो रही है। बाबू इतने भावुक हो गए हैं, इस तरह बच्चों की तरह बातें करते हैं जैसे वह अन्दर ही अन्दर बहुत कमजोर हो गए हैं। यह मीना के खिलने-खेलने के दिन हैं, लेकिन आठ बरस की ही उम्र में वह गुड़िया का ब्याह भूल गई है। सुबह से शाम तक घर का काम। कुँवर के गाल गुलाब की तरह लाल होने चाहिए थे भाभी! बचपन में ही उसके गाल पीले पड़ने लगे हैं। फाटक के पास खड़ा होकर वह भीतर बाहर की हर चीज़ को इस दृष्टि से देखता है मानो वह बहुत कुछ चाहता है और कुछ भी नहीं पाता!"

"बस करो बसंत!" तारा ने अपने आँसुओं को बलपूर्वक रोकते हुए कहा, "तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। ईश्वर के लिए ये बातें बंद करो। घावों की पपड़ियाँ न उखाड़ो।"

"नहीं मुझे बोलने दो" दूने दर्द से बसंत ने कहा, "बाबू के देखते आँगन के पेड़ पौधे मुरझा गए। वे पौधे जो उन्होंने दूर-दूर से मँगवाए थे

और जिन्हें वह उतना ही प्यार करते थे जितना हमें। इन पौधों का इस तरह मुरझा जाना ही यह बताने के लिए काफी है कि कोई बहुत बड़ी बात मेरी अनुपस्थिति में इस घर में हो गई है। इस क्षण भी मुझे लगता है कि कोई बहुत भयंकर और मनहूस संकट इस घर पर छाया है।"

दो-चार मिनट चुप रहने के बाद वह फिर बोला, "राजू आज कितने गंदे कपड़े पहिनकर स्कूल गया है। हम भी स्कूल गए थे भाभी! लेकिन हमारे कपड़े सदा साफ रहते थे। जूतों पर पालिश रहती थी। किताबें नयी रहती थीं। लेकिन राजू? मैं देखता हूँ कि राजू में घर का कोई व्यक्ति दिलचस्पी नहीं ले रहा है। उससे सब इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे वह इस घर का प्राणी न होकर पराया लड़का हो। उफ़! कितना भयानक विकास होगा राजू का। सोच-सोच कर मेरी अन्तरात्मा काँप जाती है। यह सब क्या हो गया है भाभी? क्या हो गया है? किसने तुम लोगों की यह दशा कर दी। बोलो। यदि वह कोई आदमी हो तो मैं उसका गला घोंट दूँ सरकार हो तो उलट दूँ, ईश्वर हो तो उसके मुख पर थूक दूँ।"

तारा के मन का बाँध टूटने लगा। बसंत कहता गया, "भैया बहुत दुबले हो गए हैं। बदन पर मांस नहीं। हड्डी-हड्डी दिखायी पड़ती है। गाल पिचकगए हैं आँखें धँस गई हैं। भरी जवानी में उनकी कमर झुक गई है भाभी!"

'बसंत' तारा चीख पड़ी। लेकिन वह आगे न बोल सकी। शब्द गले में अँटक से गए। बाँध टूट गया। आँचल में मुख छिपाकर वह बिलख-बिलख कर रोने लगी और उसके साथ बसंत भी रो पड़ा।

काफी देर तक दोनों चुपचाप रोते रहे। कमरा रहरह कर सिसकता रहा। आँसू खतम हो जाने पर वे जमीन की ओर दृष्टि गड़ाए बैठे रहे, ऐसे मानो घर में कोई मौत हो गई हो।

दोनों के ऊपर उदासी का एक कुहासा सा छा गया है। एक दूसरे से आँख मिलाने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही है। इस खामोशी में एक घुटन सी मालूम पड़ने पर बसंत ने धीरे से कहा, "भाभी"

तारा ने आँखें उठायी पर कुछ बोली नहीं। उसकी आँखों में एक ऐसा

दर्द, एक ऐसी निराशा थी जिसे देख कर बसंत सिहर उठा। काँपती वाणी में वह बोला,

"तुम लोग ऐसे क्यों हो गए हो भाभी ?"

"मैं अभी आती हूँ" कह कर तारा उठने लगीं। उसका हाथ पकड़ कर बिठाते हुए वह बोला,

"नहीं बैठो। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। तुम फिर बात टाल देना चाहती हो। ऐसी क्या बात है जो तुम मुझसे छिपा रही हो। पहले तो तुम मुझसे कुछ नहीं छिपाती थीं। भैया तक की बातें बता देती थीं। हँसी-मजाक में भैया से न जीत पाने पर हम दोनों संयुक्त रूप से उनके विरुद्ध योजना बना कर उन्हें पराजित करते थे। मैं अपनी सब बातें तुम्हें बता देता था। हम दोनों एक दूसरे को उचित सलाह देते थे। कोई भी समस्या पैदा होती थी तो हम दोनों उस पर आपस में बहस कर एक निष्कर्ष पर पहुँचते थे और उसी के अनुसार कदम उठाते थे। अब क्यों तुम मुझसे यह छिपाव यह अलगाव सा रख रही हो। मुझमें या तुममे कौन सा ऐसा अन्तर आ गया है कि तुम मुझे अब अनजाना सा समझ रही हो। मैंने कौन सा अपराध कर दिया है जिसके दंड स्वरूप तुम मुझसे ऐसा व्यवहार कर रही हो। मुझमें कोई खराबी नहीं आयी है। मैंने शराब नहीं पी। जुआ नहीं खेला। आवारागर्दी नहीं की। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है भाभी। विश्वास करो। मैं तुम्हारे स्नेह की शपथ लेकर कहता हूँ।"

"यह बात नहीं है बसंत" तारा ने बात काटते हुए कहा, "तुम्हारे बारे में मैं ऐसा कुछ नहीं सोच रही थी। तुम तो मेरे लिए अब भी वही हो जो पाँच साल पहले थे। और मैं तुमसे कुछ छिपा भी नहीं रही हूँ।"

"तो फिर बताती क्यों नहीं" वह आकुलता से बोला।

तारा धीरे-धीरे बोलने लगी जैसे वह कुछ सोच-सोच कर कह रही हो, "क्या बताऊँ तुम्हें। बात खुद मेरी समझ में नहीं आती। मुझे भी यही कभी-कभी लगता है कि हम सभी बदल से गए हैं। हर घड़ी बदल से रहे हैं लेकिन क्यों? यह समझ में नहीं आता। बार-बार सोचने पर भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता हम बदल गए हैं यह ठीक है और मालूम है। किंतु हम क्यों बदले?

कब से हमारा बदलना शुरू हुआ ? कितने दिनों में और कितना हम बदले ? यह पता नहीं। कोई किस्सा कहानी होती तो तुम्हें आदि से अंत तक बता देती। उसके बारे में तुम्हें मैं क्या और कैसे बताऊँ जिसे मैं खुद नहीं जानती। सच मानो मेरी बुद्धि बिलकुल काम नहीं देती। अब तो सोचना विचारना करीब-करीब छूट सा गया है। और फिर सोच विचार कर हमकरें ही क्या-क्या बन जाएगा इससे। क्या फायदा ? बेकार एक और सिर दर्द मोल लेना है यह।"

बोलते-बोलते तारा खो सी गई। पैर के नाखूनों से कमरे का उखड़ा फर्श कुरेदते हुए जब उसे गुमसुम बैठे बहुत देर हो गई, तब बसंत ने एक बार उसके चिन्तनलीन मुख की ओर बड़े स्नेह से देखकर कहा, "अच्छा भाभी तुम्हें उस दिन की तो याद होगी जब मैं लन्दन के लिए यहाँ से रवाना हुआ था। तुम सभी मुझे स्टेशन छोड़ने गए थे।"

"हाँ। वह दिन भी कोई भूलने की चीज है।" तारा बोली जैसे वह कोई पुराना सपना याद कर बता रही हो, "तुम नीले रंग का सूट पहिने थे। और। और टाई भी नीली सफेद धारियों वाली थी। माथे पर अम्मा का लगाया चन्दन, गले में हमारी डाली मालाएँ। बहुत अच्छे लग रहे थे तुम उस दिन। सच। ईश्वर तुम्हारी बड़ी उमर करे। तुमने मुझसे चुपके से कहा था, कंतों का ध्यान रखना भाभी।"

"मैंने अपने भरसक उसकी देख-भाल की है बसंत। तुम्हारी और कंतों की जोड़ी बनी रहे। खूब अच्छे दिन देखने को मिलें तुम दोनों को सूरज-चाँद से बच्चे हों। खूब अच्छे कपड़े पहिनाना अपने बच्चों को। बढ़िया खाना खिलाना। पढ़ाना-लिखाना। उनकी हर माँग, हर शौक पूरा करना। खिलौनों से घर भर देना। देखना उनके नन्हें से मन को कभी कोई चोट न पहुँचे। दूसरे बच्चों से कभी वे अपने को किसी बात में छोटा न समझें। तुम्हारे बच्चों को गोद में खिलाते-खिलाते मेरी उमर बीत जाए यही चाहती हूँ। दो रोटी सुबह-शाम और साल में दो मोटी धोतियाँ दे देना। दोगे न ?" वह आगे न बोल सकी। गला भर आया। बसंत तड़प उठा। तारा की घायल कमजोर निराश निगाहें सैकड़ों पैने तीर बनकर उसके सीने में घुस गईं। उसका सारा

शरीर काँपने लगा, "ऐसा न कहो भाभी" वह तारा का हाथ पकड़ कर बोला, "ऐसा न कहो। इस घर की दीवारें तुम्हारी साधना पर टिकी हैं। तुमने इसे अपने खून से, आँसुओं से सींचा है। अम्मा और बाबू तुम्हें घर की लक्ष्मी कहते हैं। भैया के बस में होता तो वे तुम्हें सोने के मन्दिर में रखते। राजू और बीना को तुमने अपने बच्चों की तरह पाला है। और मेरी बात जाने दो। न कहना ही अच्छा है। तुम्हारे पैरों की धूल मिलती जाए जिन्दगी भर चाहे और कुछ न मिले। हाँ भाभी चाहे कंतों भी न मिले मुझे।"

"यह तुम क्या कहने लगे" तारा ने उसे बीच में रोकते हुए कहा, "पागल। बड़भागिनी हूँ मैं जो तुम ऐसा सोचते हो। पिछले जन्म में जरूर कोई बहुत अच्छा काम किया था मैंने जो इसमें तुम लोगों का साथ मिला है।"

तारा धीरे-धीरे पलंग की पाटी पर हाथ फेरने लगी। बसंत ने एक सिगरेट जलायी और दो-चार कश लिए। कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोला, "अच्छा भाभी जिस दिन मैं गया था उसके बाद की कोई और बात तुम्हें याद है। कोई और खास बात हुई थी उसके बाद आने वाले दिनों में।"

"खास बात" तारा सोचती हुई बोली, "तुम्हारे जाने के बाद। हाँ। तुम्हारे भैया को संग्रहणी हो गई थी।"

"संग्रहणी!" बसंत चौंक उठा।

"हाँ, और बीमारी बहुत बढ़ गई थी। तुम्हारे भैया करीब साल डेढ़ साल चारपाई पर पड़े रहे सूख कर काँटा हो गए थे। हकीम, डाक्टर, वैद्य, सभी का इलाज किया गया। लखनऊ, दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई भी उन्हें ले कर गए।

अम्मा बाबू का बुरा हाल था। अम्मा दिन रात उनकी चारपाई पर बैठी रहतीं। बाबू हर घड़ी डाक्टर दवा इलाज की फिक्र में दौड़ते। बहुत दिनों तक तो बीमारी का ही ठीक पता न चला। कोई कुछ बताता, कोई कुछ। बीमारी पता चलने पर भी इलाज गड़बड़ चलता रहा। कोई डाक्टर एक दवा देता, कोई दूसरी, कोई तीसरी। जब आठ महीने तक कोई फायदा नहीं हुआ तो हम सभी घबरा गए। घबराहट में जो कुछ भी कोई बताता हम वही करने

लगते। एक दवा का कोर्स पूरा होने के पहले ही दूसरी दवा शुरू कर देते। इनकी हालत बिगड़ती ही गई। ये खुद निराश से होने लगे।

अक्सर कहते, तारा अब मैं नहीं बचूँगा। इन फूल से बच्चों का क्या होगा। तुम्हारा क्या होगा बसंत लंदन में है। खैर घबराओ नहीं उसके जीते तुम लोग पर कोई आँच नहीं आएगी। बस यही दर्द है कि मैं तुम लोगों के लिए कुछ कर नहीं सका। अम्मा बाबू को भी इस बुढ़ापे में मेरी वजह से तकलीफ उठानी पड़ी। बसंत से कह देना कि मुझे उसकी बहुत याद आती थी। बहुत।

इसी तरह की टूटी-टूटी बातें किया करते थे। सुन कर मेरी छाती फटने लगती थी। इनके सामने मैं रो भी नही पाती थी। रोती तो इनका दुख और बढ़ जाता। इन्हें लाख समझाने की कोशिश करती मगर इनके मन में जैसे यह बातें घर सा बना चुकी थीं। किसी बात का असर इन पर नहीं होता था। दवा बे मन से पीते थे। कभी-कभी फेंक भी देते थे। कहते थे, क्या फायदा इससे। बेकार पैसा न खर्च करो। अब तो गंगा जल पिलाने की तैयारी करो।"

बोलते-बोलते तारा चुप हो गई। बसंत ऐशट्रे से अधजली सिगरेट के उठते धुएँ की ओर देखने लगा। कुछ देर बाद तारा ने फिर बोलना शुरू किया धीमी आवाज में।

"इसी बीमारी के सिलसिले में इनकी नौकरी छूट गई। बाबू को अपनी नौकरी और दौड़-धूप के साथ-साथ तीन चार ट्यूशन भी करने पड़े। उनका प्राविडेण्ट फंड का रुपया खतम हो गया। अम्मा के गहने बिक गए। बहुत ज्यादा मेहनत करने के कारण बाबू को ब्लड प्रेशर हो गया।"

"ब्लड प्रेशर" मन ही मन बसंत ने दुहराया।

तारा कहती जा रही थी, "वह अंदर से बहुत कमजोर हो गए। बात-बात में मुझसे कहते, "तारा बेटी घबराना नहीं। अभी मेरे बदन में काफी खून है। काफी ताकत है। सुमंत अच्छा हो जाएगा। बस अपना काम किए चलो। प्रार्थना किए चलो। हमारी पुकार भगवान जरूर सुनेगा। अगर उसने न सुनी और मेरे सुमंत को कुछ हो गया तो दुनिया से चाहेन उठे लेकिन मेरी जबान

से इस घर से उसका नाम उठ जाएगा। घबराना नहीं बेटी ! प्रार्थना करो। अपना काम किए चलो।

और भगवान ने एक दिन हमारी पुकार सुन ही ली। एक वैद्य के इलाज से इन्हें फायदा होने लगा। कुछ महीनों में ही यह चारपाई से उठने लगे। हँसने बोलने लगे। हमारे जी में जी आया। लेकिन। लेकिन कुछ दिनों बाद ही कलेजा मुँह को आ गया जब हमने सुना कि बाबू की बीमारी बढ़ गई है। डाक्टरों ने ज्यादा काम काज करना मना कर दिया। खाने पीने पर रोक सी लगा दी। पर तुम्हारे भैया बिल्कुल अच्छे हो गए थे। नौकरी भी उन्हें दूसरी मिल गई थी। लेकिन इस नौकरी में तनख्वाह केवल डेढ़ सौ रुपया मासिक मिली।"

"कुछ दिनों बाद डाक्टरों की राय से हम लोगों ने बाबू की नौकरी छुड़वायी। पहले बाबू मानते ही न थे। लेकिन जब हम लोगों ने तीन दिन अनशन किया तब उन्होंने इस्तीफा दिया। इस्तीफा लिखते समय वह बच्चे की तरह रो रहे थे। कागज पर उनके आँसुओं से कई जगह धब्बे पड़ गए थे। कई अक्षरों की स्याही फैल गई थी।"

एक ठंढी साँस लेकर बसंत ने कहा, "मैं समझ रहा हूँ भाभी ! बाबू पर उस समय क्या बीत रही होगी। वह एक मिनट भी बेकार बैठने वाले आदमी नहीं रहे हैं। किसी न किसी काम में लगे रहते थे। बेकार बैठे रहना उनके लिए मौत से भी अधिक भयानक है।

तुम लोगों का कष्ट दुख तकलीफ वह खुद झेलना चाहते थे, किंतु अपनी बीमारी के कारण ऐसा न कर पाए। अपनी इस असहाय स्थिति का ज्ञान रह-रह कर उन्हें छीलता रहा होगा। यह उनके लिए सर्प-दंशन से भी अधिक पीड़ा पहुँचाने वाला था। इन्हीं सब कारणों से उनका दिल बहुत कमजोर हो गया है। वह अपने को घर का कूड़ा समझने लगे हैं।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहना शुरू किया, "बाबू ने इस्तीफा दिया। इसके बाद क्या हुआ भाभी ? घर का खर्च कैसे चलता रहा ? भैया का वेतन तो सिर्फ डेढ़ सौ रुपए था। इतना तो खाने-पीने में ही निकल जाता रहा होगा।"

खिड़की के बाहर देखते हुए तारा ने जवाब दिया,

"घर का खर्च ? चलता ही रहा किसी तरह खींच-खींच कर। चौका बर्तन करने वाली कहारिन, खाना बनाने वाली महराजिन और कपड़े धोने वाली धोबिन छुड़ा दी गई। पहले बाबू और राजू टाँगे पर स्कूल जाते थे। बाबू के इस्तीफा देने के बाद राजू पैदल स्कूल जाने लगा। घर में बहुत जरूरी चीजें ही खरीदी जाती थीं। खाने पीने, कपड़े लत्ते में भी सावधानी बरती जाती थी। सवेरे दाल रोटी बनती थी। शाम को तरकारी पराठा। और चीजों का बनना बंद हो गया। घी की जगह वनस्पति तेल का इस्तेमाल किया गया। बच्चों को दूध की जगह चाय दी गई। इसी तरह काट छाँट कर खर्च चलता रहा।"

"हूँ" बसंत ने कहा और एक सिगरेट जलायी।

"आपके भैया का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा हो गया है। बात-बात पर बिगड़ जाते हैं। बच्चों को मार बैठते हैं और बाद में अफसोस करते हैं। अपने को भला बुरा जो जी में आया कहने लगते हैं। अपना कुछ भी ध्यान नहीं रखते। खाने पीने में रुचि नहीं रह गई। जो मिला खा लिया। कभी परसी थाली छोड़कर उठ गए। कपड़े बदलने की सुधि नहीं। कपड़ा फटा हो, पुराना हो, गंदा हो, कोई परवाह नहीं। हफ़्तों दाढ़ी नहीं बनाते। अगर कुछ कहो तो फीकी हँसी के साथ जवाब देते हैं, 'क्या होगा यह सब। बेकार की तबालत। जवानों को शोभा देती हैं ये चीजें। मैं तो बूढ़ा होने लगा।" हँसी मज़ाक दोस्त मनोरंजन सब छूट गए हैं।"

ऐश ट्रे में जल रहे सिगरेट के धुएँ ने बसंत के सामने सुमंत की एक बिगड़ी तस्वीर बना दी। बसंत ने एक ठंढी साँस ली। सिगरेट दबा कर बुझा दी। धुआँ फूँक कर उड़ा देने के बाद उसने ऐश ट्रे आँगन की ओर बनी खिड़की पर रख दी और आकर फिर पलंग पर बैठ गया। उसे लगा कि कोई धीरे-धीरे एक भारी पत्थर सा रख रहा है उसके सीने पर। तारा कह रही थी, "और अम्मा जी का भी इधर अजब हाल हो गया है। बैठे-बैठे अक्सर अपने आप ही कुछ बड़बड़ाने लगती हैं। कभी दिन-दिन भर खामोश बैठी रहेंगी।

कभी रात-रात भर पूजा करेंगी। कभी झाड़ू-बहारू से लेकर चौका बर्तन तक, हर काम खुद कर डालेंगी। किसी को हाथ तक न लगाने देंगी।"

"राजू कुँवर मीना की पढ़ाई की ओर किसी का ध्यान नहीं है। बच्चे स्कूल जाते हैं या नहीं। क्या पढ़ते हैं, क्या चाहते है, क्या करते हैं, यह सब देखने के लिए जैसे किसी को फुर्सत नहीं। पता नहीं क्या हो गया है हम लोगों को।"

"एक दूसरे से खिंचे से रहते हैं। अकारण एक दूसरे पर शक करने लगते हैं। खीझ, गुस्सा, घुटन, बेगानगी; इन्हीं में जैसे वक्त बीतता है।"

"बेमन से काम करना। जिन्दगी जैसे चले चलने दो। दर्द से कराहती हुई चरमर करती गाड़ी अपने आप खिंची जाती है। हम यह समझते हैं कि यह ढर्रा गलत है। कभी-कभी नये सिरे से सब कुछ शुरू करते हैं लेकिन कुछ दिन बाद हर चीज की तरह यह नया जोश भी पुराना पड़ जाता है। फिर वही मनहूसियत। हार कर कभी अपने को भला-बुरा कहते हुए और कभी दूसरों पर दोष मढ़ते हुए, बेबसी में रो देते हैं। अब तो यह रोना-धोना भी पुराना पड़ गया है। इससे भी जी ऊब रहा है। भगवान जाने क्या होगा।"

"इससे अच्छा ही होगा भाभी अब" बसंत ने उसे धीरज बँधाते हुए हम कहा, "अपने जीते जी अब मैं घर की इससे खराब दशा न होने दूँगा। हम सब लोग हिल-मिल कर कोशिश करेंगे और बहुत जल्द ही पहले की तरह हो जाएँगे। तुमने सब कुछ बता दिया भाभी। अब एक आखिरी बात और बता दो। मुझे लंदन खर्चे के लिए जो हर महीने तुम लोग रुपया भेजते रहे वह कहाँ से आया।"

तारा इस तरह चौंक उठी जैसे इस प्रश्न की उसे आशा नहीं थी। "वह रुपया। वह रुपया—" वह आगे कुछ कहती इसके पूर्व ही किसी के खाँसने की आवाज ने उसका ध्यान भंग किया बसंत भी चौंक उठा। नीचे आँगन में बीना खाँस रही थी। बीना काफी देर तक खाँसती रही। बसंत ने खिड़की से देखा कि खाँसते-खाँसते बीना का मुँह लाल पड़ गया है। सहारे के लिए उसने अम्मा का एक हाथ पकड़ रखा है। अम्मा दूसरे हाथ से उसके सिर और पीठ पर हाथ फेर रही हैं। खाँस चुकने के बाद बीना ने वहीं एक

किनारे थूक दिया है बलगम काफी गिरा है। बीना काफी घबरा सी गई है। वह अम्मा से लिपट कर रोने लगी है और अम्मा की आँखें भी भर आयी हैं। यह दृश्य देख कर बसंत भी काफी घबरा गया।

"बीना को क्या हुआ है भाभी" उसने काँपते हुए प्रश्न किया।

"बीना को ? कुछ तो नहीं। कुछ नहीं हुआ है। इधर कुछ दिनों से खाँसी आ रही है।" तारा ने पलंग से उठते हुए कहा। तारा का हाथ पकड़कर वह बोला, "भाभी मैं डाक्टर हूँ। मैं शकल देख कर बहुत कुछ जान लेता हूँ। मेरा मन घबरा रहा है। बोलो। बीना को क्या हुआ है। बोलो।"

तारा ने थोड़ी देर बाद रुक-रुक कर कहना शुरू किया, "बीना को प्लुरिसी हो गई है ?"

"प्लुरिसी !" बसंत ने चौंक कर कहा "कितने दिनों से है।"

"यही करीब छह महीने से।" उत्तर मिला।

"इलाज ? सरकारी दवाखाने से दवा आ जाती है।"

"सरकारी दवाखाना ! वहाँ का हाल किससे छिपा है भाभी ! मुफत मिलने वाली दवा के नाम पर पानी दिया जाता है वहाँ। किसी बड़े डाक्टर को क्यों नहीं दिखाया तुम लोगों ने ? उसकी दवा क्यों नहीं की ? जाने दो। मैं समझ गया। डाक्टर की फीस और दवा के पैसे कहाँ से आते, उफ़ !"

"नहीं, डाक्टर काले को भी दिखाया है। आजकल उन्हीं का इलाज हो रहा है।" तारा ने उसे समझाते हुए कहा।

"और इस इलाज में खर्च होने वाले रुपए कहाँ से आ रहे हैं ? बसंत ने तारा को घूरते हुए प्रश्न किया। तारा ने उसे ध्यान से देखा। एक ठंडी साँस ली और अपनी दृष्टि जमीन पर गड़ा दी।

"बोलो भाभी !" बसंत ने बहुत दर्द से कहा "बोलो आज मैं सब कुछ सुन लेना चाहता हूँ। मैं भीहर वह चोट झेल लेना चाहता हूँ जो तुम लोगों पर पड़ी है।"

तभी, "चाचा जी चाय पीने आइए" नीचे आँगन से मीना ने पुकारा।

"चलो चाय पीने" तारा बोली, "और थोड़ा घूम आओ।"

तारा के साथ सीढ़ी से उतरते हुए बसंत ने धीरे से कहा, "घर में इतना

सब हो गया और तुम लोगों ने मुझे खबर तक न भेजी। इस लायक भी न समझा। एक लाइन तक न लिख भेजी।"

"तुम्हें क्या करते ये सब बता कर। तुम वहाँ पढ़ने गए थे। पढ़ाई का ही इतना बड़ा बोझ तुम्हारे ऊपर था। ये सब बताकर तुम्हारी परेशानी और बढ़ाते ? जो होना था वह तो होता ही। किसी के रोके से रुकता नहीं। फिर तुम्हारा स्वभाव ऐसा है कि ये सब सुनते ही पढ़ाई-लिखाई छोड़कर वहाँ से भाग खड़े होते। किसी की सुनते थोड़ी। पढ़ाई-लिखाई चौपट हो जाती कि नहीं ?" तारा मुस्करा कर बोली।

बहुत स्नेह छिपा है इन शब्दों में बसंत को लगा। लेकिन कितना कठोर भी है यह। जैसे किसी ने गुलाब की पंखुरियाँ उसके मुख पर रख कर सीने में नागफनी के काँटे चुभा दिए हों।

आँगन में पहुँच कर वह तख्त पर बैठ गया और तारा रसोई में चली गई। अम्मा उसके पास आकर बैठ गई। मीना ने छोटी मेज खिसका कर उसके सामने रख दी और चाय ले आई। सबेरे की तरह ही इस वक्त भी चाय के तीन गिलास और हल्का सा नाश्ता था। नाश्ते में तली हुई मटर और सूजी का हलुआ था। मीना ने नाश्ता मेज पर रखा ही था कि,

"वाह हलवा तो बहुतअच्छा बना मालूम पड़ता है। मुझे काफी पसंद है" कह कर मुस्कराते हुए मास्टर साहब बाहर वाले दरवाजे से भीतर आते दिखायी पड़े।

मीना ने एककुर्सी खींच कर मेज के सामने रख दी। मास्टर साहब ने बैठते ही प्रश्न किया। "क्या बात है बसंत ! तुम कुछ सुस्त और उदास दिखायी पड़ते हो।"

"कुछ नहीं बाबू" उसने धीरे से उत्तर दिया "यही थोड़ी बहुत सफर की थकान है।"

"देखो इसमें क्या है" मास्टर साहब ने एक बंडल उसकी ओर बढ़ाया। बंडल खोलने पर उसने उसमें अपने नाम का एक छोटा सा बहुत सुन्दर नेम-प्लेट देखा। काठ की काली पट्टी पर सफेद अक्षरों में हिन्दी में लिखा था,

"डाक्टर बसंत कुमार एम० बी०, बी० एस० एम० आर० सी० पी० (लंदन)

"यह तो बहुत अच्छा है बाबू ! इसे कब बनवाया।" उसने पूछा।

"दोपहर में खाना खाने के बाद बेकार बैठा था। सोचा इसकी जरूरत तो पड़ेगी ही। बनवा लाया। बाहर फाटक पर लगेगा यह।" मास्टर साहब ने मुस्करा कर गर्व से कहा।

"अच्छा चाय तो पीते जाओ" अम्मा बोलीं।

"हाँ बेटा शुरू करो" मास्टर साहब ने कहा और एक चम्मच मटर खायी। बसंत ने चाय का एक घूँट लिया और चम्मच से हलुआ उठाने लगा।

"अब तुम शहर में किसी अच्छी जगह अपनी दूकान खोल लो" मास्टर साहब बोले, "तुम्हारी प्रैक्टिस चमक उठेगी। वैसे तो यहाँ डाक्टरों की भरमार है लेकिन तुम इंगलैंड रिटर्नड हो जो यहाँ अभी तक तो कोई नहीं है। जैसे-जैसे प्रैक्टिस चमके अपनी दूकान बढ़ाते जाना।"

बसंत ने कोई उत्तर नहीं दिया। मास्टर साहब कहते गए "सुनते हैं सरकारी नौकरी में तो जब से यह नयी सरकार आयी है बड़ी धाँधली हो रही है। हर कहीं बड़े आदमियों की सिफारिश चलती है। सिफारिश के बल पर ऐसे-ऐसे लड़कों को आजकल नौकरियाँ मिल रही हैं जो बिल्कुल गधे हैं। जिनके दिमाग में कूड़ा है। और जो ईमानदार सरकारों के देशों में कूड़ा उठाने का ही काम पाते, ज्यादा कुछ नहीं। और वे जो वास्तव में योग्य हैं सिफारिश न होने के कारण आज पचास रुपए की भी नौकरी नहीं पाते। बेकारी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। महँगी तो थी ही और भी तरह-तरह की नयी-नयी बुराइयाँ पैदा हो रही हैं। जो हाल आज हमारे देश का है वह किसी भी अन्य देश में किसी भी समय देखा सुना नहीं गया है। इतिहास गवाह है। कब तक दुख दर्द अत्याचार सहेंगे ये पढ़े लिखे, सोचने-समझने की शक्ति रखने वाले देश के करोड़ों जवान लड़के जिन्हें आज उनके अधिकार नहीं दिए जा रहे हैं। खून गर्म है इनका, कहीं किसी दिन कुछ ऐसा न कर बैठें जो देश के लिए अहितकर हो।"

एक मिनट चुप रहकर वह फिर बोले, "कोई देखने वाला नहीं है। सब अपने में डूबे हैं। लूट पाट नोंच खसोट। जिसको जो मिला ले कर भागा। जिसने मौका देखा दूसरे का गला धर दबाया। बस अपना! अपना! यही नारा हो गया है आजकल। आदमियत खतम सी हो गई है। नैतिकता की अर्थी उठ चुकी है। यही हाल रहा तो कुछ दिनों में घर-घर पर खून का झंडा फहराएगा! क्रान्ति हो जाएगी!! क्रान्ति !!! अच्छा हुआ ऐसा होने के पहले ही तू लौट आया रे बसंता!" मास्टर साहब उत्तेजित हो गए। उनका चेहरा लाल हो गया। अम्मा ने हाथ की माला फेरते हुए कहा,

"न खाना, न कपड़ा, न और कोई चीज। जो कुछ गाँठ में था, घर में पड़ा था वह भी छिन गया? बाप रे! कोई हद होती है। रुपए का पौने दो सेर गेहूँ! रुपए का दो सेर चना! रुपए की डेढ़ सेर दाल! रुपए का सेर भर चावल! चार आने सेर से कम कोई साग सब्जी नहीं। दूध दही घी, फल, मेवा, मिठाई, कपड़ा, हर चीज इतनी महँगी!"

"मेरे लड़कपन में रुपए का चौबीस सेर गेहूँ मिलता था। रुपए का दस सेर बढ़िया चावल था। एक रुपए में सोलह सेर दाल मिलती थी। चार पैसे की तरकारी में दोनों बेला सारा घर खाता। रुपए जोड़ा बढ़िया, फर्स्ट किलास महीन धोती मिलती थी। पंद्रह रुपए में घर का सारा खर्च महीने भर चलता था। अब तो दो सौ रुपए में भी पूरा नहीं पड़ता। बापरे! पता नहीं क्या होने वाला है?"

दो मिनट बाद वह फिर बोलीं, "अरे कलियुग आ गया है। पाप का घड़ा फूटने वाला है। तभी भगवान ये दंड दे रहे हैं। अब परलय होने वाली है। हरे राम! हरे राम! राम हरे हरे।"

थोड़ी देर तक खामोशी छायी रही। तारा ने बातचीत का क्रम बदलते हुए कहा, "होगा अम्मा। हमारे घर तो कलियुग नहीं आज बसंत आए हैं।"

"यह तो ठीक है" अम्मा मुस्करा कर बोली "लायक बेटा। अरे खाता क्यों नहीं रे बसंता!"

"हाँ खाओ" तारा ने कहा "और फिर जाकर कहीं घूम आओ। मन बहल जाएगा।"

"चाचा कहाँ जा रहे हैं ममी" सुमंत के कमरे से निकलता हुआ कुँवर बोला "मैं भी जाऊँगा घूमने।"

"तू कहाँ जाएगा" तारा उसे झिड़क कर बोली।

"नहीं मैं भी जाऊँगा" कुँवर ने मचल कर कहा।

"चल हट। बड़ा घूमने वाला" तारा ने उसे डाँटा।

"उसे डाँटती क्यों हो भाभी" बसंत ने कुँवर को गोद में बिठा कर कहा, "ठीक तो कहता है। यह जाएगा। मीना और राजू भी जाएँगे। आखिर क्यों न जाएँ ये लोग?"

"अरे कहाँ जाएँगे ये लोग। न कपड़े न लत्ते" तारा ने विरोध करना चाहा।

"तो मैं इन्हें बिना कपड़ों के ही ले जाऊँगा। फटा पुराना जो इनके पास है वही पहिनेंगे। मुझे तो ये उसी में अच्छे लगेंगे। जिन्हें न अच्छे लगें वे इनकी ओर न देखें। और इनके कपड़े देखकर किसी ने नाक भौं सिकोड़ी, हँसा, या ताना मारा तो मैं उसका सिर तोड़ दूँगा। जाओ बच्चों कपड़े बदलो। हम लोग सिविल लाइंस चलेंगे।"

बसंत की बात सुनकर बच्चे उछल पड़े। "हम घूमने जाएँगे, हम भी जाएँगे, चाचा बहुत अच्छे हैं, ममी बहुत खराब हैं" चिल्लाते हुए वे खुशी से नाचने लगे। बसंत मुस्करा उठा, तारा मुस्कुरा उठी, अम्मा और मास्टर साहब मुस्कुरा उठे।

५

कुँवर सफेद सूती मोजा, सफेद कपड़े का जूता (जो कुछ मैला है), सफेद हाफ पैण्ट और सिल्क की पुरानी सफेद हाफशर्ट पहने हैं जिस पर लाल फूल और हरीपत्तियाँ बनी हैं। वह अपना काउ ब्वायहैट भी लगाये है जो उसे सवेरे बसंत ने दिया था। मीना भी उसी की दी हुई सिल्क की क्रीम कलर की फ्राक और सफेद सैंडिल पहने हुए हैं। राजू भूरे रंग की बुश शर्ट और क्रीम कलर का पैंट पहने हुए है जो उसके छोटा हो गया है। उसका जूता आगे से फटा हुआ है जिसे कभी-कभी वह छिपाने का प्रयास कर रहा है ! इन सभी के हाथ और मुँह रगड़ कर धोये जाने के कारण अभी तक लाल और कुछ रूखा-पन लिये हैं। सिर में हल्का सा तेल लगा हुआ है, परंतु बाल ठीक तरह से जम नहीं पाये है और हवा में बिखर से जाते हैं। बसंत ने नीले रंग का सूट और नीली बुंदियों वाला टाई पहन रखी है। उसके बाल कुछ लापरवाही से कढ़े हैं। काले जूते पर पालिश नहीं है और दाढ़ी भी बढ़ी मालूम पड़ती है। हाथ में वह सस्ते दामों वाला सिगरेट का एक पैकेट और दियासलाई लिये है।

राजू और कुँवर आगे की सीट पर और बसंत तथा मीना पीछे वाली सीट पर बैठे हैं। टाँगा चलते ही कुँवर किलकारी मार कर हँस पड़ा। उसकी हँसी में थोड़ा बहुत सभी ने योग दिया। टाँगा मंद गति से सिविल लाइंस की ओर बढ़ने लगा।

"सिविल लाइन में गुब्बारा मिलता है। खिलौने, चाकलेट भी मिलती है" कुँवर ने कहा, "बहुत सी दूकाने हैं ! खूब सजी रहती हैं ! बिजली भी खूब चमकती है !"

"बिजली नहीं चमकती है, दूकानों में बिजली के बल्ब जलते हैं" मीना ने वाक्य सुधारा, "और देख जरा सम्हल कर चलना, वहाँ बड़ी भीड़ रहती है। कहीं किसी मोटर के नीचे न दब जाना !"

"मोटर ! पीं पीं ! पीं पीं ! मोटर बहुत अच्छी होती है ! मैं भी एक बार चढ़ा हूँ मोटर पर ! चाचा! तुम भी एक मोटर खरीदो ! कै पैसे की मिलेगी ?"

"पैसों की नहीं बहुत सारे रुपयों की मिलती हैं" मीना बोली कुँवर की अबोधता पर मुस्कराती हुई।

"हाँ बेटा ! मैं मोटर खरीदूँगा तेरे लिए", बसंत ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "कैसे लेगा ?"

"जैसी उन वकील साहब के यहाँ है जो हमारे घर के बगल में रहते हैं" कुँवर बोला और रास्ते का दृश्य देखने लगा।

हवा का मधुर स्पर्श, बच्चों की किलकती बातचीत और रास्ते के दृश्यों में बसंत अपना दुख कुछ भूलने लगा। उसने प्रयास कर अपना ध्यान घर की बातों से हटाने की कोशिश की। इसके लिए कभी वह बच्चों से बातें करने लगता। कभी रास्ते की कोई चीज देखने लगता। उसका मन कुछ हल्का होने लगा।

बच्चे बहुत प्रसन्न हैं। सिविल लाइंस जाने की खुशी में वे सब कुछ भूल गए हैं। उनकी बातचीत सुनकर बसंत कभी-कभी मुस्करा देता है और कभी दर्द से उसका दिल तड़प उठता है। ऐसा होने पर वह फिर सड़क की किसी चीज को ध्यान से देखने लगता है।

थोड़ी देर बाद मीना ने राजू की ओर देखते हुए कहा "राजू ! तुम्हें याद है जब हम इसके पहले, पिछली बार सिविल लाइंस गये थे। होटल में बैठे थे। बड़ा अच्छा होटल था। आइस क्रीम खायी थी।"

"याद क्यों नहीं है। आज से दो साल पहले भाभी और बड़े भैया भी थे। भैया बीमारी से अच्छे ही हुए थे। उस दिन होटल में बढ़िया कपड़े पहने हुए और लोग भी बैठे थे। जब बड़े भैया ने बिल दिया था तब बैरा ने सलाम किया था। सफेद कपड़े पहने था बैरा।"

"बिल क्या है ? बैग क्या है ?" कुँवर ने पूछा।

"तू तो हर बात पूछता है", मीना बोली, "चुपचाप नहीं बैठता है।"

मीना की बात से कुँवर रूठ गया। उसका मुँह लटक आया। वह सीट पर

एक ओर हट कर बैठ गया। उसे रूठते देख बसंत ने उठा कर अपनी गोद में ले लिया और कहा, "बिगड़ गया क्या ? मीना बहुत खराब है। मैं तुझे सिविल लाइंस में खूब अच्छे खिलौने ले दूँगा। मीना को कुछ नहीं दूँगा।" यह कह कर उसने मीना को इशारों में समझाया कि वह चुप रहे।

मीना ने तुनक कर कहा, "मैं बच्ची थोड़ी हूँ। खिलौना थोड़ी खेलती हूँ।"

"घर चलो मैं तुमको और राजू चाचा दोनों को पापा से कह कर पिटवाऊँगा।"

कुंवर की इस धमकी से मीना और राजू दोनों ही कुछ डर गए। उसे फुसलाने के लिए राजू ने कहा, "कुँवर बड़ा अच्छा लड़का है, मैं अपने केमरे से इसकी फोटो खींचूँगा।"

"सच !" कुँवर प्रसन्न हो गया।

"सच बहुत अच्छी फोटो" राजू बोला।

"कुँवर के कपड़े बड़े अच्छे हैं ! मैं कुँवर को हरी मटर खिलाऊँगी", मीना बोली।

"हरी मटर !" कुँवर ने और प्रसन्न होकर कहा, "घी में तलना जीजी ! और उसमें मिर्चा न डालना।"

फोटो और हरी मटर की बात सुनकर कुँवर पापा से पिटवाने की बात भूल गया। राजू और मीना की जान में जान आई। बसंत भी मुस्कराये बिना न रह सका। कुँवर की कमीज पर हाथ फेरते हुए उसने यों ही पूछ लिया, "बेटा यह कमीज किसने सिली है ?"

"दादी ने।" कुँवर ने उत्तर दिया "दादी बहुत अच्छा कपड़ा सीती हैं। कमीज, पायजामा, फ्राक, पेटीकोट, नेकर, जाँघिया। तकिये का गिलाफ। रोज ही तो सीती रहती हैं रात में। पड़ोस के बहुत से लोग उनसे कपड़े सिलवाते हैं। पैसा भी देते हैं।"

"क्या ?" बसंत चौंक पड़ा "कपड़ा सिलवाते हैं ? पैसा देते हैं ?"

"हाँ।" राजू बोला "बाबू भी एक ट्यूशन करते हैं। उससे और अम्मा के कपड़े सीने से जो पैसे मिलते हैं उन्हीं से बीना जीजी की दवाई आती है।"

बसंत को एक जोरदार धक्का लगा। कुँवर उसकी गोद से गिरते-गिरते बचा। उसने कुँवर को सम्हाला और जोर से सीने से चिपका लिया। उसने एक गहरी साँस ली। टाँगा पुलिस लाइन पहुँच चुका था। बच्चों के साथ साथ बसंत भी उधर देखने लगा। परेड हो रही थी। कुछ सिपाही घोड़ों को हर्डल्स कुदा रहे थे। बैंड पर तेज गति से बन्देमातरम् की धुन बजायी जा रही थी। राजू सीटी और कुँवर ताली बजाने लगा। मीना गुनगुनाने लगी।

"बन्दे मातरम्,
सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलां, मातरम्।"

भावावेश में बसंत का बदन काँपने लगा। उसकी आँखें भर आईं। पुलिस लाइन पीछे छूट गई। बैंड की धुन भी हल्की पड़ने लगी। राजू ने सीटी बजाना बंद कर दिया। कुँवर की ताली की आवाज और मीना का गुनगुनाना भी बन्द हो गया।

"तो अम्मा ने सिलाई की रात-रात भर। इसी से आँखें खराब हुईं उनकी", वह सोचने लगा। इतने में ही, "कंतो जी का बंगला। कंतो जी का बंगला", कुँवर चिल्ला पड़ा। बसंत ने देखा टाँगा कंतो के बंगले के पास पहुँच चुका है।

"कंतो के यहाँ चलोगे बच्चो" उसने मुस्कराते हुए पूछा।

"हाँ !" कुँवर बोला।

"मैं भी चलूँगी" मीना बोली।

"छोटे भय्या", राजू धीरे से बोला, "मैं नहीं जाऊँगा। मेरा जूता फटा है।"

बसंत ने कंतो के बंगले की ओर देखा, राजू की ओर देखा और कहा, "अच्छा नहीं चलेंगे।"

"चाचा मुझे यहीं उतार दो। मैं कंतो जी को लेकर सिविल लाइंस आ जाऊँगी।"

मीना का यह प्रस्ताव बसंत को काफी पसंद आया। उसने मन ही मन मीना की खूब प्रशंसा की और उसे एक अच्छी चीज खरीद देना तय किया। "बहुत ठीक, टाँगा रोको" वह बोला।

मीना के उतर जाने पर उसने उससे कहा, "देख रास्ता न भूल जाना। और जल्दी आना। हम लोग लकी रेंज की किसी दूकान में रहेंगे।"

मीना बँगले में प्रवेश कर चुकी है, यह देख लेने के बाद बसंत ने टाँगे वाले से कहा, "चलो भाई।"

टाँगा सिविल लाइंस की ओर बढ़ने लगा। वह सोचने लगा, "कंतो आ तो जायेगी? सबेरे का आया हूँ और अभी तक उससे मिलने नहीं गया हूँ। नाराज तो न हो जायेगी वह यह जानकर। इस वक्त भी खुद नहीं गया हूँ। देखो आती है कि नहीं। आयेगी भी तो काफी देर तक मुँह फुलाये बैठी रहेगी। खैर! मना लूँगा! समझा दूँगा।"

"उसकी माँ और पिता से लौटती बेला मिलूँगा। अच्छे तो होंगे वह लोग। कोई खास बात होती तो कंतो ने खत में लिखी होती या भाभी ने बतलायी होती।"

"सिविल लाइंस आ गई कुँवर", राजू की आवाज से बसंत का ध्यान टूट गया।

"कहाँ?" कुँवर ने पूछा।

"बस यहीं से शुरू होती है।" राजू ने एक दूकान की ओर इशारा कर कहा।"

सिविल लाइंस के केन्द्रीय चौराहे के पास सड़क के एक किनारे बसंत ने टाँगा रुकवाया। टाँगे वाले को दाम दिये। पाँच बज रहे थे। अभी सड़कों पर तथा दूकानों में ज्यादा चहल पहल नहीं थी। दफ्तरों से घर लौटते हुए क्लर्कों का समूह इक्के, टाँगे, रिक्शे और सायकिलों पर अस्त-व्यस्त दशा में रेल के धुएँ सा कैनिंग रोड पर जाता दिखायी पड़ रहा था। पान की दूकानों

तथा फुटपाथों पर बनी चाय की दूकानों पर कुछ लोग जमा थे। सूरज डूबने में अभी कुछ देर थी। पच्छिम में सूरज का प्रकाश धीरे-धीरे कम हो रहा था।

सिविल लाइंस का इलाहाबाद के जीवन में इधर कुछ वर्षों से एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया है। शाम को अधिकांश शिक्षित वर्ग यहीं घूमने आता है। विभिन्न रुचियों के अनुकूल अनेक होटल, रेस्तराँ, मनोरंजन-गृह, सिनेमा और दूकानें यहाँ जगमगाती रहती हैं। शहर की आधुनिकता का भी यह प्रतीक है। नये ढंग की कई इमारतें हैं जिनकी दूकानों में जरूरत और विलास की छोटी से लेकर बड़ी तक सभी वस्तुएँ मिलती हैं।

राजू और कुँवर को साथ लेकर बसंत एक जूतेवाले की दूकान में गया। आठ-दस तरह के जूते देखने के बाद राजू ने एक चमड़े का काला आक्सफोर्ड शू पसंद किया। जूता खरीद कर जब बसंत दूकान से चलने लगा तब उसकी दृष्टि कुँवर पर पड़ी जो शो केस के पास खड़ा होकर बच्चों के एक मखमली फूलदार जूते की ओर गौर से देख रहा था।

"तुम भी जूता लोगे बेटा," उसने पूछा।

"हाँ! मैं भी लूँगा। यह फूलदार।"

"यह जूता भी दे दीजिए", बसंत ने दूकानदार से कहा। कुँवर ने नया जूता पहन लिया और पुराना डिब्बे में रखकर राजू की ओर बढ़ाते हुए जरा शान से कहा, "चाचा इसे लिये चलो। घर पर चलकर मुझे दे देना।" और यह कर उसने बसंत की उँगली पकड़ ली। कुँवर का यह प्रस्ताव राजू को बहुत बुरा लगा। सिविल लाइंस में जूता लेकर चलना। वह भी अपने से छोटे कुँवर का। कोई देखेगा तो क्या कहेगा। कोई दोस्त मिल जायेगा तब? वह कुँवर को डाँटने जा रहा था, पर बसंत को मुस्कराते देखकर खुद झेंप गया। आँखें नीची कर उसने चुपचाप डिब्बा पकड़ लिया।

दूकान से निकलते ही नंग-धड़ंग लगभग आठ वर्ष का एक भिखारी बालक बसंत के सामने आकर बोला।

"साहब एक पैसा दे दीजिये, बड़ी भूख लगी है।"

बसंत ने उसे पर्स खोल कर एक इकन्नी दी, जिसे पाकर वह प्रसन्नता से उछलता हुआ चला गया। उसके चले जाने के बाद कुँवर ने पूछा।

"चाचा ! यह पैसा क्यों माँगता है ?"

बसंत के कुछ कहने के पूर्व ही राजू ने कहा, "क्यों माँगता है ? भूखा होगा। कोई चीज खाना चाहता होगा।"

"उसके घर नहीं है ? ममी नही हैं ? पापा नहीं हैं ?"

"होंगे लेकिन उनके पास पैसा न होगा।"

"यह तो नंगा भी था ! इसके पास कपड़े नहीं हैं क्या ?"

"न होंगे ?"

"और यह पढ़ता भी नहीं है ? ऐसे ही घूमता है ? बड़ा होकर क्या करेगा ? ऐसे ही घूमेगा ?"

"अब यह सब मैं क्या जानूँ। तू तो ऐसा पूछ रहा मानो मैं उसका भाई हूँ। उसके घर में रहता हूँ।"

राजू की झिड़की से रूठे कुँवर को खुश करने के लिए बसंत ने एक हॉकर से लेमनड्राप, चाकलेट और नमकीन काजू के कुछ पैकेट लिये। राजू और कुँवर में यह सामान बाँट और एक लेमनड्राप अपने मुँह में डाल वह इनके साथ धीरे-धीरे एक-एक दूकान गौर से देखता घूमने लगा।

एक दूकान की ओर इशारा कर, "यह किस चीज की दूकान है चाचा ?" कुँवर ने पूछा।

"यहाँ दवा मिलती है" बसंत ने उत्तर दिया।

"लेकिन यह तो बहुत बड़ी है" कुँवर ने जैसे अपने से कहा।

"हाँ" बसंत बोला और बढ़ने लगा। वह प्रत्येक व्यक्ति को भी ध्यान से देख रहा था इस आशा से कि शायद कोई पुराना दोस्त या जान पहचान वाला मिल जाये। कुछ दूर चलने पर सामने से एक गुब्बारा बेचने वाला आता दिखायी दिया : कुँवर के लिए बसंत ने एक गुब्बारा खरीदा। कुँवर ने अब उसकी उँगली छोड़ दी और गुब्बारा लेकर बगल इधर-उधर देखता हुआ उसके साथ-साथ चलने लगा।

दूकानें बिजली के प्रकाश में जगमगाने लगीं थीं। अँधेरा हो रहा था कुछ देर के बाद एक बड़ी दूकान की ओर देखकर कुँवर बोला, "चाचा यह तो बहुत बड़ी दूकान है। इसमें तो बहुत सी चीजें हैं। कौन लेता है इन्हें?"

बसंत कुछ जवाब देता इसके पहले राजू ने हँसते हुए कहा।

"कौन लेता है? अरे आदमी लेते हैं! और कौन लेता है।"

"लेकिन हम लोग तो कुछ नहीं ले रहे हैं। चाचा हम लोग आदमी नहीं हैं क्या?" कुँवर ने प्रश्न किया।

और प्रश्न बसंत के सीने में गड़ गया, वह उत्तर न दे पाया। कुँवर और राजू को लेकर वह उस दूकान में घुस गया। काफी देर खिलौने देखने के बाद कुँवर ने एक सिपाही और एक गुड़िया पसंद की।

"चाचा मैं इन्हें लूँगा। इस सिपाही की बन्दूक बिलकुल मेरी बन्दूक की तरह है! वाह! और इसका टोप भी मेरी तरह है।"

"अच्छी बात है। ले लो। लेकिन गुड़िया क्या करोगे? गुड़िया तो लड़कियाँ खेलती हैं, तुम हो लड़के हो।"

"मैं इसके साथ अपनी शादी करूँगा! कुँवर बोला—

उसकी बात सुनकर बसंत, राजू दूकानदार और अन्य लोग भी हँस पड़े।

हँसी की आवाज अभी गूँज ही रही थी कि, "छोटे भय्या! मैं यह बाँसुरी लूँगा और मीना के लिए यह गीतों की किताब ले लो!" राजू ने कुछ संकोच से कहा।

"तू बाँसुरी बजाना जानता है?" बसंत ने पूछा।

राजू से किये गए इस प्रश्न का उत्तर कुँवर ने दिया, "राजू चाचा बड़ी अच्छी बाँसुरी बजाते हैं। और मीनी जीजी बड़ा अच्छा गाती हैं।"

"अच्छा! अच्छा, अपना-अपना सामान उठाओ, कह कर बसंत ने दूकानदार का बिल चुकाया। दूकान से बाहर आकर उसने कुँवर से पूछा—

"आइस क्रीम खाओगे बेटा?"

"यस सर" कुँवर बोला पुलक कर,

लेकिन कुँवर की पुलक जैसे सहम सी गई। सड़क को कँपाता, पुल पर

से गुजरती मेल ट्रेन की तरह शोर मचाता, एक टैंक बहुत तेजी से कैनिंग रोड पर चला जा रहा था। टैंक की आवाज सुनकर कुँवर बसंत से वैसे ही लिपट गया जैसे बरसात में बादलों की गरज सुनकर वह तारा से चिपट जाता था।

"चाचा !" वह घबड़ाकर बोला, "यह क्या है ?"

"यह टैंक है बेटा" बसंत ने उसे पुचकार कर कहा, "लड़ाई में काम आता है।"

"यह तो बड़ा खराब है और ममी भी कहती है कि लड़ाई बड़ी खराब चीज है। हमें लड़ना नहीं चाहिए। सब के साथ मिल-जुल कर रहना चाहिये। एक दूसरे से प्रेम करना चाहिए।"

"हाँ बेटा, ममी ठीक कहती हैं।"

"चाचा इस टैंक पर तो बड़े-बड़े आदमी बैठे थे" कुँवर फिर बोला, "क्या बड़े आदमी भी आपस में लड़ते हैं ?"

इस प्रश्न का उत्तर बसंत के पास न था। वह मौन रहा। शीघ्र ही पास के एक अच्छे रेस्तराँ में जैसे उसने प्रश्न टालते हुए राजू और कुँवर के साथ प्रवेश किया। एक मेज पर उसने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई रखी, कुर्सियों पर राजू और कुँवर को बैठा कर एक अँगड़ाई ली और खुद भी एक कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"आमलेट खाओगे कुँवर ? और तुम राजू ?"—उसने पूछा।

"हाँ मुझे आमलेट बहुत अच्छा लगता है" कुँवर बोला।

राजू चुप रहा। बसंत के दुबारा पूछने पर उसने भी स्वीकृति दी। बैरा को बसंत ने केक, आइस कीम और आमलेट लाने का आदेश दिया।

बैरा के चले जाने के बाद वह रेस्तराँ बैठे अन्य लोगों को देखने लगा। रेस्तराँ साधारण था। सात-आठ छोटी-छोटी गोल मेजें। प्रत्येक के किनारे छोटी-छोटी चार कुर्सियाँ। मेजों पर प्लास्टिक के टेबिल क्लाथ बिछे थे। मेजों पर चीनी की एक-एक ऐश ट्रे भी रखी थी। अभी ज्यादा भीड़ नहीं थी। दो मेजें खाली थीं। कोई परिचित व्यक्ति न दिखाई पड़ने पर बसंत ने एक सिगरेट जलायी और एक लम्बा कश खींचा।

"चाचा यह तो बिलकुल बँदरिया है" कुँवर ने दूसरी मेज पर बैठी एक नवयुवती की ओर इशारा करके कहा जो पाउडर तथा लिपिस्टिक अधिक मात्रा में लगाये थी और बहुत भद्दी मालूम पड़ रही थी।

"चुप-चुप। ऐसे नहीं कहते" बसंत बोला।

"और यह तो बिलकुल बिस्तुइया है! अरे वह! बसंत की बात अनसुनी करते हुए कुँवर एक दूसरी लड़की की ओर देखकर फिर बोल उठा जिसके बाल अंग्रेजी ढंग के कटे थे (बाब्ड) और जो अंग्रेज न होकर हिन्दुस्तानी थी!

"चुप बैठता है कि नहीं," राजू ने डाँटा और कुँवर के रूठने के पहले ही बैरा ने सामान लाकर मेज पर रख दिया।

"खाओ भाई।" बसंत ने कहा। राजू और कुँवर के आगे प्लेटें खिसका कर वह खुद भी आमलेट खाने लगा।

थोड़ी देर बाद उसने पूछा—

"कुँवर आमलेट पसन्द आया?"

"हाँ! बहुत अच्छा।"

"और आइस क्रीम?"

"आइस क्रीम भी बहुत अच्छी है और केक भी। ममी पापा के लिए भी ले लो। मीना, बीना अम्मा के लिए ले लो! बाबू के लिए भी ले लो!"

"भैय्या मैं कल स्कूल नहीं जाऊँगा।"

"क्यों?" बसंत ने प्लेट से उठाकर अपनी दृष्टि राजू के मुख पर डालते हुए पूछा।

"तुम्हारे आने की खुशी में।"

"मेरे आने की खुशी में स्कूल न जायेगा? मेरे आने की खुशी में तो तुझे और पढ़ना चाहिए।"

"मीना भी तो स्कूल नहीं गयी थी आज," राजू बोला, "भाभी भी तो नहीं गयी थीं आज।"

"भाभी भी नहीं गयी थीं?" बसंत ने ऐसे पूछा जैसे कि बात उसके समझ में न आयी हो "भाभी कहाँ स्कूल जाती हैं?"

"जाती तो हैं", राजू ने प्रतिवाद किया, "लड़कियों के एक स्कूल में पढ़ाती हैं।"

ठंढी आइस क्रीम बसंत के मुँह में अंगारा बन गई। किसी ने एक स्विच दबा कर उसके दिमाग में एक बल्ब सा जला दिया। भाभी भी नौकरी करती हैं! तो उसे जो रुपया लंदन खर्च के लिए भेजा जाता था वह भाभी के वेतन का रुपया था। बाबू के इस्तीफा देने के बाद भाभी ने नौकरी की। दोपहर में भाभी ने यह बातें उसे नहीं बतायी। अम्मा के कपड़े सीने की बात भी छिपा गई। तभी कुँवर चिल्ला उठा। विचारों की शृंखला टूट गई। बसंत ने देखा दरवाजे से मीना की उँगली पकड़े कंतो प्रवेश कर रही है।

कंतो को देखकर एक क्षण के लिए वह सब कुछ भूल गया। उसके ओठों पर मुस्कान और पुतलियों में एक चमक सी थिरक उठी। हाथों में छूरी काँटा लिये ही वह तेज कदम रखता हुआ दरवाजे की ओर चला। उसके जी में आया कि कंतो को जोर से अपनी बाँहों में भर ले। बसंत को देखकर कंतो भी मुस्करा पड़ी। उसकी भी पुतलियाँ थिरक उठीं। उसके जी में आया कि बसंत के सीने पर सिर रख दे। वह भी तेज कदम रखती हुई बसंत की ओर बढ़ने लगी। दो-चार कदम चलने के बाद ही बसंत एक कुर्सी से टकरा गया। उसे ध्यान आया कि वह रेस्तराँ में है, जहाँ और लोग बैठे हैं। राजू, मीना और कुँवर भी हैं। वह जहाँ था, वहीं रुक गया। उसे रुकते देख कंतो भी रुक गई। दोनों के बीच लगभग गज भर का फासला था। दोनों की आँखें मिली, "कंतो!" बसंत ने धीरे से कहा। उत्तर में कंतो की पुतलियाँ झुक गईं। आधे मिनट चुपचाप खड़े रहने के बाद दोनों धीरे-धीरे मेज की ओर बढ़े और कुर्सियों पर बैठ गए। मीना भी एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। राजू कुँवर ने खाना बन्द कर दिया था और कभी बसंत की ओर और कभी कंतो की ओर देखने लगे थे। बसंत और कंतो एक-दूसरे को देख रहे थे, लेकिन आँखें नहीं मिला पा रहे थे।

दो-चार मिनट ऐसे ही बीत गए। कुछ दूर खड़ा बूढ़ा बैरा इनकी ओर बहुत प्यार से देख रहा था। उसकी आँखें छलछला उठी थीं। शायद

स्थिति समझ कर वह आगे बढ़ा और, "साहब ! कुछ और लीजियेगा" उसने पूछा।

"हाँ, हाँ" बसंत कुछ खोया-खोया सा बोला, "दो आमलेट, दो आइसक्रीम और दो पीस केक ले आओ। मीना कुछ और खाओगी ? और, और" वह कंतो से कुछ पूछना चाहता था, लेकिन बोल न सका।

"नहीं" मीना ने उत्तर दिया।

बैरा चुपचाप चला गया। कंतो वैसे ही आँखें झुकाये बैठी रही। बसंत ने साहस कर उसकी ओर देखने की कोशिश की लेकिन देख न सका। वह मीना की ओर देखने लगा।

तभी, "चाचा ! टार्जन सिनेमा आया है !" मीना बोली।

"टार्जन !" राजू पुलक कर बोला।

"सिनेमा देखोगे तुम लोग ?" बसंत ने पूछा।

"हाँ !" राजू मीना ने सम्मिलित स्वर से उत्तर दिया।

"मैं भी सिनेमा देखूँगा" कुँवर ने बसंत का कोट पकड़ कर कहा "मैंने आज तक सिनेमा नहीं देखा है।"

"अच्छा-अच्छा तुम भी देखना" बसंत ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा इसने आज तक सिनेमा नहीं देखा है, उसने कुछ दर्द से सोचा। बैरा ने प्लेटें मेज पर रख दीं।

"खाओ मीना। तुम भी खाओ कंतो" उसने धीरे से कहा।

मीना ने खाना शुरू कर दिया, लेकिन कंतो चुप ही बैठी रही।

"कंतो !" बसंत ने उसकी ओर देखकर कहा। उसके स्वर में अनुरोध के साथ-साथ कातरता भी झलक रही थी। कंतो ने छूरी काँटा पकड़ा। आमलेट का एक पीस काँटे में उठाया और कुछ ऊपर उठाकर फिर प्लेट में रख दिया। "मुझसे नहीं खाया जाता।" वह धीरे से बोली। बसंत से खुद भी खाया नहीं जा रहा था। थोड़ी देर बाद उसने घड़ी देखी साढ़े छह बज रहे थे।

"सिनेमा कै बजे शुरू होता है राजू ?" उसने प्रश्न किया।

"सात बजे" राजू ने उत्तर दिया।

"तब चलो तुम लोगों को सिनेमा में बैठा दूँ।"

राजू कुँवर पहले ही खाना-पीना समाप्त कर चुके थे। मीना भी खा चुकी थी। रेस्तराँ का वातावरण कुछ बोझिल सा मालूम पड़ने लगा था। बैरा बिल ले आया था। बिल चुका कर बसंत ने बैरा को एक रुपया टिप दिया। बैरा ने झुक कर सलाम किया। उसे सलाम करते देख कुँवर मीना और राजू मुस्करा उठे। रेस्तराँ से बाहर निकलकर बसंत सबके साथ सिनेमा की ओर चला। कंतो उससे दो कदम पीछे मीना के साथ चल रही थी। सब चुप थे।

"चाचा यह किस चीज की दूकान है?"

"दवाई की।"

"यह भी दवाई की दूकान है और जो पहले देखी थी वह भी दवाई की दूकान थी?" कुँवर ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"हाँ! दवाइयों की कम से कम दो सौ दूकाने हैं इलाहाबाद में", राजू ने उसे समझाया, "बड़े-बड़े शहरों में तो कई हजार दूकानें दवाइयों की होती हैं।"

"कई हजार! तब तो कई हजार आदमी बीमार पड़ते होंगे" कुँवर ने दूने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ आजकल बहुत से लोग बीमार पड़ते हैं। तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा हो रही हैं रोज।"

"अच्छा!" राजू की बात शायद कुँवर की कल्पना के परे थी। इसलिए वह कुछ और न बोल सका।

सामने से एक युवक को दो सिपाही हथकड़ी लगाये लिये चले आ रहे थे। सबका ध्यान उसकी ओर गया। युवक शिक्षित मालूम पड़ता है। फटी कमीज, मैला पैंट और फटा जूता है पहने हैं। दुबला पतला। दाढ़ी बढ़ी, बाल बिखरे, निगाहें नीची, जमीन की ओर। उसके झुके कंधों से मालूम पड़ता है कि उसके ऊपर बहुत सी जिम्मेदारियाँ है। उसका पिचका हुआ सीना कह रहा है कि उसने काफी चोटें झेली हैं! मुख-मुद्रा बता रही है कि

वह अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं है। वह बार-बार मुट्ठियाँ बाँध रहा है। इस युग के सरकारी तथा गैर-सरकारी-शोषण और अत्याचारों का मासूम शिकार मालूम पड़ता है वह।

"इसे सिपाही क्यों पकड़े हैं?" कुँवर ने पूछा।

"इसने चोरी की होगी या और कोई बुरा काम किया" राजू बोला।

"लेकिन यह तो बिलकुल पापा की तरह है। बेचारा भूखा है। सिपाही बड़े खराब हैं।"

"सिपाही क्यों खराब हैं! सिपाही तो वही करते हैं जो सरकार कहती है।"

"तो सरकार बड़ी खराब है", कुँवर बोला, मैं सरकार को पीटूँगा! अपनी बंदूक से मार दूँगा!"

थोड़ी दूर चलने के बाद, मीना हँसती हुई बोली, "सिनेमा आ गया कुँवर, यह सामने।"

"अच्छा यही है। यह तो बहुत अच्छा है। खूब रोशनी होती है। वाह, चाचा, वाह। चाचा वेरी गुड" कुँवर ने नाचते हुए कहा।

कंतों को बरामदे में छोड़कर बसंत राजू, मीना और कुँवर को सिनेमा हाउस के भीतर बैठाने के लिए चला।

६

बच्चों को सिनेमा में बैठा कर बसंत बरामदे में खड़ी कंतो के पास आ पहुँचा। कंतो दूर आकाश में खिले चाँद की ओर देख रही थी। बसंत उसके नजदीक लगभग गज भर के फासले पर रुक कर उसे देखने लगा। कंतो को इस तरह चोरी-चोरी देखना उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। बरामदे में लगे तेज पावर के दूधिया रंग के बल्बों के प्रकाश में उसने कंतो को आँखें भर-भर कर देखा। उसके जी मे आया कि वह कंतों को बस इसी तरह देखता रहे। कंतों को देखने के लिए उसका सारा बदन एक आँख बन जाये।

उसने देखा कि कंतों पहले से कुछ दुबली हो गई है। पीलिमा लिये हुए गालों मे बहुत थोड़ी सी लाली बची है। बालों मे तेल नहीं है, जल्दबाजी मे काढ़े गए हैं, घुँघराली काली एक लट माथे पर हवा के झकोरे में थिरक रही है। बाल पीछे की ओर गुलाबी फूलों की एक माला से बाँधे गए हैं। आँखों में हल्का सा काजल। अधखुली पलकें। कुछ खुले ओंठ। गले के हार और हाथों की चूड़ियों की चमक कुछ कम हो गई है। जैसे वह बहुत दिनों बाद सन्दूक से निकाले गए हों। नीले रंग की साड़ी और सुनहले रंग का ब्लाउज जिन्हें देखने से यह मालूम पड़ता है कि वे काफी इस्तेमाल किये जा चुके हैं। पैरों की सफेद सैंडिल का एक फीता टूटा और दूसरे का सफेद मखमल जगह जगह फटा हुआ। रेस्तराँ से सिनेमा तक रास्ते में वह कंतो से कुछ बोल न पाया था। वह उसके बारे में कुछ सोच भी न सका था। केवल उसकी उपस्थिति का मीठा-मीठा लजीला ज्ञान उसे था। अब उसे बरामदे में ध्यान से देखने के बाद दर्द का समुद्र उसके हृदय में लहर लेने लगा। उसे पाँच साल में पहली बार लंदन जाने पर अफसोस होने लगा।

"तुम लंदन क्यों गये ?" उसका मन जैसे उलाहना देते हुए उससे कहने लगा।

"कंतो" बहुत धीरे से वह बोला।

"हाँ" कंतो चाँद की ओर देखते हुए बोली ठीक उसी तरह जैसे कि वह पाँच साल पहले आकाश में निकलते इन्द्र धनुष को देखती हुई खोई-खोई बोला करती थी। किन्तु दूसरे ही क्षण वह चौंक उठी। उसने बगल में खड़े बसंत की ओर देखा, फिर आँखें झुका लीं।

कंतो के साथ बसंत फुटपाथ पर चर्च की ओर चलने लगा सिविल लाइंस की दूकानें, शोर और भीड़ पीछे छोड़ता हुआ। कंतो उसके बगल में चल रही थी जमीन की ओर देखती हुई। कुछ दूर चलने के बाद बसंत ने कहा—

"कंतो"

कंतो मौन रही और उसी तरह चलती रही, जमीन की ओर देखती हुई।

"नाराज हो क्या ?" बसंत ने पूछा।

कंतो फिर मौन रही। उसकी मूकता से बसंत का दर्द बढ़ने लगा।

"मेरे आने से तुम्हें कोई खुशी नहीं हुई कंतो ?"

कंतो इस बार भी खामोश रही, लेकिन एक ठंढी साँस उसके मिंचते ओठों से निकल गई। बसंत से आगे नहीं चला गया। वह रुक गया एक पेड़ की छाया में। उसे रुकता देखकर कंतो भी रुक गई।

बसंत ने कंतो का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा और बहुत कातर स्वर में कहा, 'कंतो'।

उससे आगे न बोला गया, गला भर आया। कंतो ने पहले तो थोड़ा सा विरोध किया, लेकिन दूसरे ही क्षण बसंत की डूबती आवाज सुनकर उससे लिपट गई और उसके कन्धे पर सिर रखकर रोने लगी। बसंत की आँखें भी बरसने लगी। उसने कंतो को जोर से बाँहों में भर लिया। उसे चक्कर सा आने लगा। सहारे के लिए उसने पेड़ के तने से अपनी पीठ टिका दी। कंतो रोती जा रही थी, रोती जा रही थी। बसंत उसके बालों में उँगलिया फेर रहा था। थोड़ी देर वह रुक-रुक कर कहने लगा—

"रोओ नहीं, रोओ नहीं कंतो। अब मैं नहीं जाऊँगा। सच, तुम्हें छोड़-

कर अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा। चुप रहो कंतो। तबियत खराब हो जायेगी। तुम तो बड़ी अच्छी लड़की हो। मेरा कहना मानती हो। बड़ी समझदार हो। रोओ नहीं। अब तो मैं आ गया हूँ। अब थोड़े ही कहीं जाऊँगा। चुप हो जाओ। चुप हो जाओ। सच कहता हूँ, अब कहीं नहीं जाऊँगा कंतो।"

"मेरी कसम खाओ," कंतो ने मचलकर कहा।

"तेरी कसम पगली" वह बोला और कंतो पुलक उठी उसके ओठों से हँसी की एक हल्की सी ध्वनि निकल पड़ी। आँसू थमने लगे। उसने बसंत के गले में बाँह डाल दी। बसंत ने बाएँ हाथ से उसकी कमर पकड़ ली और दाएँ से मुख ऊपर उठाया। दोनों की आँखें मिलीं। कंतो ने जोर से अपनी पलकें बन्द कर लीं, लेकिन ओठों की मुस्कराहट न बन्द कर पाई। बसंत ने धीरे से कहा—

"मीठी लड़की।"

"निर्दयी" कंतो बोली—

और बसंत ने कंतो के ओठों पर ओंठ रख दिये।

हवा के झकोरे, आकाश का चाँद, कंतो के जूड़े लगे फूलों की सुगंध, आँधी बन्द आँखें, खुले ओंठ, गर्म साँसें सब मिल-जुल कर बसंत को एक नशे में डुबाने लगे। वह काँपता हुआ कंतो बार-बार चूमने लगा। कभी ओंठ, कभी कपोल, कभी पलकें, कभी माथा, कभी ग्रीवा। बेसुध कंतो उसकी बाँहों में झूल सी गई।

थोड़ी देर बाद बसंत को स्टेशन से आती रेल की सीटी की आवाज सुनायी पड़ी। उसने सिर उठाया पर दूसरे ही क्षण वह फिर कंतो का मुख चूमने के लिए झुका। कंतो लजाकर पीछे हट गई।

"तुम्हें रत्ती भर शरम नहीं है, किसी बात का ध्यान नहीं है" वह बोली।

"शरम !" बसंत ने कहा, "कैसी शरम। फिर यहाँ आस-पास कोई है भी तो नहीं। चारों ओर सन्नाटा, सड़क खामोश। हल्का कोहरा संसार की नजरों से दूर, बस हम दोनों, इस घने पेड़ की छाया में।"

"कवि की दुम," कह कर कंतो ने उसके एक चुटकी काट ली। बसंत

उछल पड़ा। बहुत दिन बाद उसे यह अनुभव फिर हुआ था। एक गुदगुदी सी मचने लगी उसके बदन में। झेंपते हुए उसने कहा, "कंतो, । एक बार फिर चुटकी काटो" और हाथों में मुख छिपा लिया। कंतो धीरे-धीरे उसके बदन में चुटकियाँ काटने लगी। वह हँसने लगा। जैसे-जैसे कंतो चुटकियाँ काटती उसकी हँसी बढ़ती जाती। हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गए। वह बेदम सा हो गया, "बस कर. । बस कर पगली। दुष्ट ! बिलकुल मार डालेगी क्या।" कंतों ने मुस्करा कर उसके ओठ चूम लिये और मुख पर उँगलियाँ फेरने लगी।

थोड़ी देर बाद बसंत ने कहा, "चलो नाचें।"

"क्या ?" कंतों चौंक कर बोली।

"नाचें, बाल डाँस।"

"लेकिन मुझे तो नहीं आता है" कंतो ने कुछ संकोच से कहा।

"तो मुझे ही कौन आता है" कह कर वह कंतों की कमर में एक हाथ डाल दूसरे से उसका एक हाथ पकड़ घूम-घूम कर नाचने और एक अंग्रेजी गीत गुनगुनाने लगा। कंतो भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगी।

थोड़ी देर नाचने के बाद वह रुक गया। उसने ताली बजा कर कहा—

"बहुत अच्छे बहुत अच्छे। धन्यवाद आदरणीया महिला।"

यह सुनकर कंतो हँस पड़ी।

"चलो कदम से कदम मिला कर मार्च करें। रेडी, फारवर्ड मार्च" कंतो का हाथ पकड़ कर वह बलात् उसे अपने बगल में चलाने लगा।

"लेफ़्ट राइट, लेफ़्ट राइट। लेफ़्ट राइट, एबाउट टर्न। लेफ़्ट राइट, लेफ़्ट राइट, हाल्ट वन टू !"

"चलो कंतो दौड़ें !" वह बोला और कंतो के कुछ कहने के पूर्व ही उसे अपने साथ दौड़ाने लगा। दौड़ते हुए वह कह रहा था, "बक अप, बक अप" हंड्रेड यार्ड्स फाइनल। वेरी गुड। दौड़े चलो। मार दिया। अरे वाह।"

जब कतो हाँफने लगी तब वह रुका। "हियर-हियर, फर्स्ट प्राइज़। इनाम

में एक चुम्बन, चलो यहाँ बैठें कह कर उसने कंतो को दोनों हाथों में उठा लिया और पेड़ के नीचे फुटपाथ पर रखी एक बेंच की ओर चला।

कंतो को धीरे से बेंच पर बैठा कर वह खुद भी बगल में बैठा गया। कंतो के कंधे पर एक हाथ रखकर उसने दूसरे से उसका एक हाथ पकड़ लिया। कंतो का हाँफना धीरे-धीरे कम हो रहा था।

कुछ देर बाद अपनी उँगलियों से कंतों की उँगलियों को दबाते हुए उसने कहा।

"और कहो। क्या हाल-चाल हैं। अच्छी तो रहीं।

"तुमसे मतलब" कंतो कुछ रुखाई से बोली।

"अच्छा, तो अभी नाराज़गी गई नहीं" उसने मुस्करा कर कहा।

"नाराज़गी ? नाराज़गी कैसी ? नाराज़ भी तो आदमी अपने से होता है। बेगानों से नहीं" कंतो ने उसी प्रकार रूखे स्वरों में कहा। बसंत की मुस्कान खो गई।

"मैं बेगाना हूँ ? मैं बेगाना हूँ कंतो ?" उसने कुछ हत प्रभ होकर कहा।

"तो क्या हो। सबेरे से आये हो एक बार भी मेरा ध्यान नहीं आया स्टेशन से घर जाते समय दो मिनट के लिए मेरे घर पर रुक नहीं सकते थे ? बीच ही में तो पड़ता है। बाद में ही चले आते।"

"मैंने सबेरे तुम्हारे नौकर से पूछा था। उसने बताया था कि उस समय तुम घूमने गई थी। बाद में घर का रंग-ढंग देखकर और कुछ सोचने का मौका नहीं मिला। घर टूट फूट गया है ! घर में लोगों का अजब हाल है। सभी बीमार हैं। बसंत ने सफाई देते हुए कहा पर कंतों बीच ही में बात काट कर फटकारते हुए कहने लगी, "झूठ ! मेरे घर आजकल कोई नौकर नहीं है। तुम्हें यह भी मालूम है कि मेरे घर का क्या हाल चाल है ? मेरे घर वाले कैसे हैं ? कंतो जिन्दा है या मर गई ?"

"कंतो !" निरुत्तर बसंत उसे रोकता सा बोला।

कंतो की आवाज में दर्द उमड़ने लगा। वह कहती गई, "बी० ए० के बाद मेरी पढ़ाई रोक दी गई। मैंने सोचा था कि एम० ए० पास करूँगी।

कोई नौकरी करूँगी। समाज की, देश की सेवा करूँगी। मानवता की उन्नति के लिए अपना योग दूँगी। लेकिन नहीं। मुझे पढ़ने नहीं दिया गया—

'क्या करोगी आगे पढ़कर ? शादी ब्याह करोगी कि नौकरी ? कब तक कुँवारी बैठी रहोगी ? लोग क्या कहते होंगे ?'

"भाड़ में जायें लोग। दो साल से घर की चहारदीवारी में बन्द। सबेरे काम, दोपहर काम, शाम काम ! और रात में भी जब बिस्तर पर थकी-माँदी लेटूँ तो तुम्हारा यह बदसूरत चेहरा सामने आ जाये। रात में भी एक मिनट चैन नहीं।"

"कंतो !" बसंत घबरा कर बोला।

"चुप रहो !" कंतो की आवाज में कभी दर्द, कभी गुस्सा और कभी बेबसी कराह रही थी, "घर की दीवार। चौबीसों घंटे घर की दीवार में कैद। कभी सिनेमा देखने की तबियत होती है। कभी घूमने का जी चाहता है। कभी किसी सहेली के यहाँ जाने का या उसे अपने यहाँ बुलाने का जी चाहता है। लेकिन नहीं। कोई देखने वाला नहीं है। मेरी साड़ियाँ फट गई हैं। क्रीम की शीशी आठ महीने से खतम है। पढ़ने के लिए कोई नयी किताब तक लाने वाला नहीं है। किसे परवाह है मेरी। बाबू चिल्ला-चिल्ला कर मेरी नाक में दम किये रहते हैं। अम्मा बात-बात में रोया करती हैं। छोटा भाई आवारा लड़कों के साथ घूमा करता है। मैं कहती हूँ तुम लोग सब के सब मुझे छोड़ क्यों नहीं देते हो मैं ऊब गई हूँ इस घर से। अपनी जिन्दगी से मुझे घृणा हो गई है ! अम्मा से, बाबू से; छोटे भाई से तुमसे। मुझे मार क्यों नहीं डालते डाक्टर बसंत कुमार ! थोड़ा सा पोटैशियम साइनाइट दे दो। छुट्टी मिल जायेगी तुम सब लोगों को और मुझे भी" कंतो का गला भर आया। बसंत ने उसे सीने से चिपका लिया। कंतो धीरे-धीरे सिसकियाँ लेने लगी।

"बसंत", कंतो ने धीरे से कहा, "मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता। यहाँ से कहीं और चलो।"

"कहाँ चलें कंतो ?"

"वहाँ" उँगलियों से चाँद की ओर इशारा कर वह बोली। बसंत ने उसका माथा चूम लिया।

"बड़ा अच्छा आदमी है यह चाँद" बसंत ने कहा।

"हाँ!" कंतो बोली।

"मेरा बहुत बड़ा दोस्त है यह।"

"ईश्वर बड़ी उमर करे उसकी।"

"इसकी प्रेयसी भी बड़ी अच्छी है।"

"हाँ! आज मेरे घर आयेगी। मेरी बचपन की सहेली है न" कंतो खोई-खोई सी बोली।

"उसके पैरों पर मेरा सिर" बसंत ने कहा और कंतो के बालों की एक लहराती लट चूम ली।

दोनों मुस्कराते चाँद को देखने लगे। आसपास कोई न था। अजब खामोशी सी छायी थी। कभी-कभी पेड़ की पत्तियाँ गुननुना उठती थीं। भीनी-भीनी सुगंधित वायु का झोंका उन्हें चूम जाता था। दूर हल्की चाँदनी में डूबा चर्च दिखलाई पड़ रहा था। दोनों सपनों में डूबने लगे।

कुछ देर बाद सड़क पर जाती एक मोटर के हार्न की आवाज से उनका ध्यान टूट गया। बसंत ने खड़े होकर एक अँगड़ाई ली। बेंच के सामने दो चार कदम टहलने के बाद एक सिगरेट जलायी और फिर आकर कंतो के पास बैठ गया। सिगरेट का एक कश लेते हुए उसने कहा—

"और कहो कंतो। तुम्हारे बाबू जी का क्या हाल है?"

"बाबू जी! अब नौकरी से रिटायर हो गए हैं, पेंशन पाते हैं। दिन भर घर में बड़बड़ाते घूमते हैं। कभी किसी को डाँटते हैं, कभी किसी को वजह बे-वजह फटकारते हैं। पेंशन हो जाने के कारण अब रुपया कम मिलता है। खर्च पूरा नहीं पड़ता। इसी से मकान का आधा हिस्सा किराये पर उठा दिया है।"

"कैसे आदमी हैं किरायेदार।"

"वैसे तो अच्छे हैं, लेकिन किराया देने में कभी-कभी टालमटोल करते

हैं। तरह-तरह के बहाने करते हैं। मकान भी बुरी तरह से इस्तेमाल कर रहे हैं, कभी दरवाजा तोड़ देते हैं, तो कभी आलमारी। फर्श भी कमरों का जगह-जगह खोद डाला है। दीवारों पर पान थूकते हैं। उनका लड़का भी बड़ा दुष्ट है। एक दो बार चिट्ठियाँ भी भेजी हैं उसने। प्रेम-सम्बंधी बहुत से कोटेशंस हैं उसमें।"

"बड़ा बदतमीज़ है" बसंत ने क्रोध से कहा, "मुझे दिखाना मैं बच्चू का सिर तोड़ दूँगा! साला उल्लू का पट्ठा। चलो अभी चलें।"

"बिगड़ते क्यों हो?" कंतो ने हँसते हुए कहा, "अभी तो नया-नया लड़का है। बी० ए० में पढ़ता है। यह बेवकूफियाँ खुद ही छोड़ देगा, साल दो साल में जब समझ आ जायेगी और फिर तुम भी तो पहले यही किया करते थे। भूल गए मेरे ताँगे के पीछे सायकिल दौड़ाना। सिनेमा हाउस में पीछे बैठ कर चुपके चुपके मेरे बालों में हाथ फेरना। भीड़ में मुझे धक्का लगा कर आगे बढ़ जाना।"

"मैं लेकिन मैं" झेंपता हुआ बसंत निरुत्तर हो गया था। कुछ देर बाद वह बात बदलते हुए बोला, "अम्मा कैसी हैं?"

"ठीक ही हैं। हाँ, अब बात-बात पर रोने लगती हैं। बाबू से कहा सुनी हो जाती है। क्या करें खर्चा पूरा नहीं पड़ता। सुबह से शाम तक पैसों के पीछे चिकचिक हुआ करती है। खींचातानी लगी रहती है। छोटा भाई दिन भर और रात को दस-दस बजे तक लापता रहता है। कुछ पूछो तो झुँझला कर भला बुरा कहने लगता है। सोलह बरस का हुआ। राजू के साथ पढ़ता है, लेकिन कोई तमीज़ नहीं। बड़े छोटे का कोई ख्याल नहीं। कोई अदब नहीं। अम्मा को मारने दौड़ता है। बाबू को भी डाँटने लगा है। अब तो गाली उसके जबान पर चौबीसों घण्टे रहती है। बड़ी भद्दी-भद्दी गालियाँ जिन्हें सुनकर कै होने लगती है।"

"मैं उसे समझा दूंगा। सब ठीक हो जायेगा। चिन्ता न करो" बसंत ने उसे धीरज देते हुए कहा।

कंतो थोड़ी देर बाद बोली, "अच्छा अब तुम अपना हाल चाल सुनाओ क्या करने का इरादा है ?"

"इरादा" बसंत ने कहा, "यहीं कहीं छोटी मोटी दूकान खोल लूँगा। शायद दो रोटी मिलने लगे। घर की हालत तो तुम जानती हो। मुझसे तो देखा नहीं जाता।"

"घर की हालत सुधारने से सुधरेगी" कंतो ने उसे समझाते हुआ कहा, "कोशिश करो इसके लिए। हाथ पर हाथ रख कर बैठने से और इस तरह से आहें भरने से काम नहीं चलेगा।"

"हाँ कंतो मैं कल ही से अपना काम शुरू कर दूँगा और अपना घर सुधार कर ही दम लूँगा।" बसंत ने उत्तेजित होकर कहा। एक मिनट रुक कर उसने फिर धीरे-धीरे कहना शुरू किया,

"कंतो एक बात कहूँ बुरा तो नहीं मानोगी ? बात यह है, बात यह है कंतो.....

"कहो न रुक क्यों गए"

"बात यह है कि, देखो गलत न समझना। मैं चाहता हूँ कि हमारी शादी कुछ दिन और रुकी रहे। जब घर की हालत सुधर जाये तब हो। मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम्हें मेरे घर में किसी बात की तकलीफ हो।"

"जैसा ठीक समझो" कंतो ने एक साँस लेकर कहा, "मेरे लिए तो शादी होना न होना बराबर है। मेरे तो शादी ब्याह के दिन बीत से गए। तुम्हें प्यार करती थी। आखिरी दम तक करती रहूँगी। तुम्हें अपना जो समझती थी वह समझती रहूँगी। हमारी शादी होने न होने से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस बीच अगर कोई दूसरी लड़की पसंद आ जाये तो उसी से कर लेना, मैं बिलकुल बुरा नहीं मानूँगी। मेरी तरफ से तुम आजाद हो। हाँ ! लेकिन शादी में बुलाना मुझे भी। अपनी इन आँखों से न जाने क्यों तुम्हारी शादी देखना चाहती हूँ।"

"कंतो !" बसंत ने चीख कर हथेली से उसका मुँह बन्द कर दिया और कहा, "क्या बक रही है पगली। मुझसे गलती हुई, उसे माफ कर। इतना

कड़ा दंड न दे। दोनों गरीबी में भी साथ रह लेंगे। कड़ी से कड़ी मुसीबत साथ उठा लेंगे। हमने अपने ब्याह के लिए पूर्णिमा की रात तय की थी। अब की आने वाली पूर्णिमा को हमारा ब्याह होगा। समझीं। नाहीं न करना। बोलो ठीक है! तैयार?"

कंतो ने उसके सीने में अपना मुँह छिपा लिया और धीरे से कहा, "निर्दयी!"

"मीठी लड़की" कंतो के ओठ चूम कर बसंत बोला। कंतो उसके चुटकियाँ काटने लगी। वह हँसता हुआ उछलने लगा। "बस करो। बस करो कंतो, नहीं मारूँगा। हाय रे! बस कर दुष्ट। हाय राम।"

"बंगला मिठाई खिलाओ" कंतो बोली—

"मंजूर। चलो।"

कंतो और बसंत एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए सिविल लाइंस के प्रमुख बाजार की ओर चले, कभी उछलते, कभी घूम-घूम कर नाचते, कभी एक पैर पर चल कर, कभी कदम से कदम मिला कर, कभी हँसते, कभी फुटपाथ पर पड़ी पत्तियाँ एक दूसरे के ऊपर उछाल कर ताली बजाते। कंतो हिन्दी का एक गीत गुनगुनाने लगी। बसंत साथ-साथ सीटी बजाने लगा।

कुछ देर बाद सिविल लाइंस की दूकाने और भीड़-भाड़ शुरू होते ही कंतो ने गुनगुनाना और बसंत ने सीटी बजाना बन्द कर दिया। नये-नये ढंगों से सजायी गई दूकानें रंग बिरंगे बिजली के बल्बों के प्रकाश में जगमगा रही हैं। सभी घूमने फिरने वाले मस्ती में झूम रहे रहे हैं। क्षण-क्षण हँसी के कहकहे सुनायी पड़ रहे हैं। हवा का झोंका चलने वालों की गति बरबस धीमी कर रहा है। पेड़ों की पत्तियाँ गुनगुना रही हैं। आकाश में बदलों की नौका पर चाँद अलसाया किसी दूर दिशा की ओर चला जा रहा है। पेड़ों की पत्तियों का मंद संगीत प्राणों के किसी विशेष भाग में प्रवेश कर किसी विशेष भावना को जगा रहा है। सिविल लाइंस इस समय अपनी पूरी जवानी पर है। रूप के समुद्र में डूब जाने को जी चाहता है। डूब-डूब जाने को जी चाहता है।

लकी-रेंज का एक दो चक्कर लगाने के बाद बसंत और कंतो ने मिठाई की एक दूकान में प्रवेश किया और एक प्राइवेट केबिन में बैठ गए।

बैठने के बाद बसंत ने जैसे ही कंतो का हाथ पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचा, बैरा ने केबिन का दरवाज़ा खोला। बसंत ने कंतो का हाथ छोड़ दिया। कंतो ने आँखें मेज पर गड़ा दीं। बसंत भी कुछ झेंप रहा था तभी बैरा ने मीनू दिया और स्थिति सम्हालते हुए सलाम किया।

"बोलो क्या लिया जाए" बसंत ने मीनू कंतो की ओर बढ़ा कर कहा। कंतो ने मीनू ले लिया पर मौन रही। बैरा के इस आकस्मिक आगमन से वह कुछ हतप्रभ सी हो गई थी। न जाने क्या सोचेगा यह बैरा कहीं उसने देख तो नहीं लिया। उसे बसंत पर बेहद गुस्सा आ रहा था। न समय देखता है न अवसर। जब देखो तब शैतानी किया करता है। किसी बात का ध्यान नहीं।

कंतो का मौन और बैरा की उपस्थिति बसंत को अखरने लगी।

"बोलो भी क्या लोगी" कंतो से उसने फिर कहा।

"हनी ड्यू, चमचम, रस मलाई" कंतो ने सिर झुका कर कहा, "और नमकीन चीज कोई। दही बड़ा, फुलकी, हरी मटर।"

"आइस क्रीम भी ?" बैरा ने पूछा।

"हाँ, आइस क्रीम भी ले आओ" वह बोली।

बैरा के चले जाने पर कंतो ने बिगड़ कर बसंत से कहा, "तुम बिलकुल बेशरम हो।"

"क्या ? फिर शरम की बात उठायी" बसंत ने डाँटते हुए कहा।

"अच्छा जी मेरे ही ऊपर रोब जमाने की भी सोची है। जरा शक्ल तो देखूँ। अभी यह बैरा ही जोर से डाँट दे तो मेज के नीचे घुस जाओ बच्चू और मुझसे कहने लगो "कंतो बैरा को भगा दे। कह दे बसंत जी घर पर नहीं है।" झेंप क्या रहे हो। ओंठ पर जीभ क्या फेर रहे हो। उँगलियाँ क्यों मरोड़ रहे हो। जरा इस मेज पर लगे शीशे में अपनी शक्ल तो देखो। कितने ईडियट यानी बेवकूफ मालूम पड़ते हो तुम इस वक्त। इंगलैंड गए थे। डाक्टरी करेंगे।

अरे घास छीलो कहीं। डाक्टरी फाक्टरी तुम्हारे मान की नहीं। घास छीलना बहुत अच्छा होता है। वर्जिश हो जाती है। स्वास्थ्य बनता है। घास खाना तो और भी फायदा पहुँचाता है। उसमें विटामिन ए से लेकर विटामिन ज़ेड तक सभी होते हैं और जब घास सूख जाए तो उसे अपने दिमाग में भर लेना।"

"चुप रह" बसंत ने झल्ला कर कहा, काफी जोर से।

बैरा सामान ले आया था।

"साहब को तुमसे कुछ कहना है बैरा" कंतो बोली—

बैरा ने बसंत की ओर देखकर कहा, "साहब हुक्म।"

"कुछ नहीं! कुछ नहीं! सब ठीक है। तुम, तुम जाओ" बसंत ने झेंप कर कहा। बैरा के चले जाने पर कंतो बोली, "मुँह क्यों फुलाये बैठे हो। खाओ न और देखो अब कभी किसी बाहरी आदमी के सामने ऐसी बदतमीज़ी मत करना। अरे तुम तो रोने लगे?" कंतो ने बसंत को अपनी ओर खींच लिया। बसंत ने उसके आँचल में मुख छिपा लिया। थोड़ी देर बाद आँचल से आँखें पोंछ कर मुस्कराता हुआ वह बोला—

"कंतो कितने मूर्ख हैं हम दोनों।"

"हाँ" कंतो ने कहा, "और कितना अच्छा हो कि जिन्दगी भर हम ऐसे ही रहें।

"और कितना अच्छा हो कि दुनिया में अक्लमंद बनने वाला हर आदमी हमारी ही तरह बेवकूफ बन जाये।"

"ऐसा होना असम्भव है" कंतो ने कहा, "अक्लमंद के चारों तरफ भली-बुरी आकांक्षाएँ, ऊँचे नीचे स्वार्थ, उचित अनुचित मान अपमान का एक मोहक जाल घिरा हुआ है जिसके बाहर झाँक कर देखना उसकी कोशिशों और शक्ति के परे है। किसी भी चीज को देखने के लिए उसका अपना माइक्रासकोप है। किसी बात को समझने तथा ग्रहण करने के लिये उसका अपना रिसीवर है। किसी भी चीज की कीमत निर्धारित करने के लिए उसकी अपनी तराजू है और हर चीज पर हँसने का उसका अपना ढंग है। सूरज की नयी किरणें उसके घर के रोशनदानों को छूकर, मौसम की नयी हवा दरवाजे के बंद किवाड़ों की

साँकल खटखटाकर लौट जाती है। कोयल के नये गीत के लिए उसकी खिड़की बन्द है। आम के नये बौर उसकी देहली पर सड़ जाते हैं। दुनिया का सुख-दुख, सपने, अभिलाषा उस तक नहीं पहुँचते। बन्द कमरे में अपनी परछाईं से बातें करता हुआ, सड़े-गले ग्रंथों पर सिर रख कर मदहोशी में हँसता हुआ वह जीता है, पागलपन में रोता हुआ दम तोड़ देता है। दुनिया वैसे ही कराहती हुई चलती है। अन्तर केवल इतना होता है कि एक अक्लमंद आदमी के मरने के बाद उसके मकान पर किसी दूसरे अक्लमंद आदमी का नेम-प्लेट टँग जाता है। पहले वाले की चीजें कूड़े के साथ दूसरा म्युनिसिपैलिटी के डस्ट बिन में फेंक देता है और यह क्रम चलता रहता है, चलता रहता है।" बोलते-बोलते कंता विचारों में खो गई। थोड़ी देर बाद बसंत ने चम्मच उठा कर कहा "लो। शुरू करो" और वह खुद भी मटर खाने लगा। "हाँ जी" कंता हनी ड्यू खाती हुई बोली "खाओ पियो यह सब तो रोज का रोना हो गया है अब। लेकिन पता नहीं क्यों मन नहीं स्वीकार करता। एक विद्रोह सा सृष्टि के समस्त कैनवास के प्रति उठता है। लगता है हमारे सारे जीवन में कहीं कोई पेंच बदल गया है जो चूड़ी पर फिट नहीं बैठता। गलत स्क्रू लगने पर मशीन से जो कराह उठती हैं जो खराबी पैदा हो जाती है वही हमारे अन्दर आज मालूम पड़ती है। कहाँ है ? क्या है ? कैसे दूर होगी ? पता नहीं। समझ में नहीं आता। एक आहत नाग सी फुफकार उठती है जो लगता है या तो मुझे खतम कर देगी या किसी और को। यह कोई और कौन होगा ठीक नहीं कह सकती। कभी एक चेहरा दिखायी पड़ता है कभी दूसरा। कभी सैकड़ों एक साथ। कभी अम्मा बाबू का, कभी तुम्हारा और कभी अपना। और खतम हो जाने के बाद क्या होगा यह भी नहीं बता सकती। एक अस्पष्ट आभास सा होता है। लगता है जो होगा वह आज जो है उससे अच्छा ही होगा। क्योंकि उसके आदि में स्नेह है, मध्य में स्नेह है और अंत में भी स्नेह ही होगा। स्नेह का जो भी रूप सामने आयेगा वह शुभ और कल्याणकारी ही होगा। सुन्दर ही होगा।"

"मुझे तो लगता है, हमें आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक संतुलन की जरूरत है। इस संतुलन के न होने से ही आज ये खराबियाँ पैदा हो गई हैं" बसंत बोला।

"लेकिन यह संतुलन आयेगा कैसे ?" कंतो ने पूछा।

"शिक्षा से।"

"शिक्षा कैसी ?"

कंतो का प्रश्न बसंत को कुछ अजीब लगा। उसने कुछ रुककर उत्तर दिया, "शिक्षा कैसी ? शिक्षा जो शिक्षा है।"

"मतलब किस प्रकार की शिक्षा। किस ढंग की, किस विषय की। शिक्षा उचित है या अनुचित, ठीक है या गलत, यह सब बातें कौन तय करेगा" कंतो ने अपनी बात साफ की।

"मैं तय करूंगा। तुम तय करोगी। हम सभी तय करेंगे" बसंत का वाक्य पूरा होते ही कंतो बोली, "मैं तुम हम सभी अगर तय करेंगे तो क्या वही अक्लमंद आदमी वाली बात फिर नहीं उठती। सब के माइक्रासकोप तराजू और रिसीवर अलग होंगे। यदि हम कुछ बहुमत से तै कर भी लेंगे तो क्या वही बात प्रत्येक के लिए हितकर होगी। हर आदमी की भौतिक मानसिक आध्यात्मिक जरूरतें अलग-अलग होती हैं। मेरी दृष्टि में तो यह भी बर्बरता साम्राज्यवाद तानाशाही या पूँजीवाद का ही दूसरा रूप रहेगा। खराबियाँ, बुराइयाँ, अभाव जारी ही रहेंगे। शोषण समाप्त नहीं हो जायेगा आदमी का इससे। तो फिर ? फिर रास्ता कौन है ?"

और बसंत को सचमुच रास्ता नहीं मिल रहा है। वह चम्मच से धीरे-धीरे मेज खटखटा रहा है। होटल में शायद काफी लोग जमा हो गए हैं। प्याले तश्तरियों की खटर पटर, चम्मच गिलासों की खनक, हँसी के कहकहे रह रहकर सुनायी पड़ते हैं।

थोड़ी देर तक बसंत की ओर देखने के बाद कंतो बोली—

"अच्छा मान लो यह संतुलन आ जाए, सभी बुराइयाँ दूर हो जाएँ, अभाव मिट जाएँ; उसके बाद हमें किस चीज की जरूरत होगी !"

"एक दूसरे की तुम्हें मेरी मुझे तुम्हारी।" बसंत बोला।

"मान लो यह भी पूरी हो गई। उसके बाद ?"

"दुनिया की।"

"उसके बाद ?"

"यदि ईश्वर है तो उसकी और उसके बाद किसकी जरूरत होगी यह उस समय सोचेंगे, इस वक्त तो आइसक्रीम ठंडी हो रही है" बसंत ने झल्ला कर कहा।

"तो जरूरत बनी रहेगी" कंतो दर्द से मुस्कराई।

"हाँ जरूरत बनी रहेगी। प्रगति के लिए यह ठीक भी है। देखना यह है कि जरूरतें ठीक रास्ते पर जा रही हैं या नहीं।"

"ठीक और गलत कौन निर्धारित करेगा।"

"तुम। मैं। हम सभी।"

"फिर वही अक्लमंद आदमी की बात" कंतो ने बात काटी। बसंत खीझ गया। वह काफी तैश में आकर बोला, "हाँ उठेगी। अक्लमंद आदमी की बात उठेगी। लेकिन उसके घर के खिड़की दरवाजे रोशनदान हर किरण के लिए, हर हवा के लिए, हर गीत के लिए खुले रहेंगे। उसकी ही बात मान्य होगी। हम वही करेंगे जो अच्छा होगा।"

"और गाँधी, गौतम, ईसा, प्लेटो, अरस्तू आदि महानुभावों द्वारा बनायी गई भूल भुलैया में स्नेह सत्य परमार्थ का आदर्श लिए बढ़ते जाएँगे, बढ़ते जाएँगे।" कंतो ने बसंत का वाक्य व्यंग से पूरा किया और जोर से हँस पड़ी। बसत ने बहस टालते हुए कहा, "जो ठीक समझो वही करो।"

"अहम्‌वादी। व्यक्तिवादी।" कंतो ने फटकारा।

"दूसरों का भी ध्यान रखो।"

"बक अप नेता। वेल डन सुधारक। बुद्धि का पूँजीवाद। मलेरिया का मिक्श्चर बना रहे हो क्या डाक्टर ?"

"शटअप" बसंत चिल्ला उठा।

बरसात की कराहती हवा सी उठकर कंतो ने एक अँगड़ाई ली और कहा—

"जो कुछ ठीक समझो वही करो। बहुत अच्छा डाक्टर। नौ बज रहे हैं। सिनेमा खतम होने वाला है। मैं समझती हूँ कि अब हमें यहाँ से चलना चाहिए। बिल चुकाओ और चलो।"

बिल चुका कर बसंत कंतो के साथ दूकान के बाहर आया और सिनेमा की ओर चला। उसकी आँखें जमीन की ओर झुकी हैं। कंतो भी खामोश है। कभी-कभी वह दूकानों की एक-एक कर बुझती बत्तियों की ओर देख लेती है। कुछ दूर चलने पर बसंत बोला, "छोड़ो भी जी। एक बहुत बड़े महाप्राण मनोवैज्ञानिक का कहना है कि मानव की इस छोटी-सी जिन्दगी में हजारों तरह के चक्कर हैं। इतने कि चक्कर आ जाए। अच्छा भला आदमी घनचक्कर बन जाए। इसलिए टालो यह सब। इस वक्त तो रात जवान है। हम तुम जवान हैं।"

"हाँ रात सदा जवान रहेगी" कंतो बोली और हम तुम कभी बूढ़े न होंगे।"

बसंत ने कातर स्वर में कहा, "कंतो तुझे क्या हो गया है पगली ?"

"बुद्धि का टीबी" हँसते हुए कंतो बोली।

"कोई बात नहीं। तुम डाक्टर हो और मैं भी उदार दब्बू मरीज़। ठीक हो जायेगा शादी ब्याह के बाद सब" कंतो फिर दर्द से हँसी।

"कंतो, कितने बेवकूफ हैं हम दोनों" बसंत बोला।

"हाँ।" कंतो ने कहा, "और भगवान करे कोई हमारी तरह न हो।"

दोनों अपने-अपने विचारों में लीन चलते रहे। जैसे ही वे सिनेमा घर के पास पहुँचे सिनेमा खतम हुआ, कंतो को बरामदे में एक स्थान पर रुका रहने का आदेश दे बसंत बच्चों को लाने चला। कुछ दूर जाने पर उसने मुड़ कर देखा, कंतो दूर आकाश में खिले चाँद की ओर देख रही थी।

७

बच्चों को लेकर बसंत सिनेमा के बरामदे में खड़ी कंतो के पास पहुँचा। मीना कंतो को झकझोरते हुए बोली "सिनेमा बहुत अच्छा था।" कंतो की तन्द्रा टूटी। उदासी दूर हो गई। वह मुस्कुराती हुई बच्चों की ओर देखने लगी।

"हाँ बहुत अच्छा था" कुँवर ने उछलकर कहा, शेर, भालू, मगर, हाथी अरे टार्जन सबसे लड़ता है। एक लड़की को तो वह शेर से बचाता है। चाचा मैं भी टार्जन बनूँगा।"

और कुँवर ने गुड़िया कन्धे पर रख कर बरामदे में इधर-उधर दौड़ना शुरू किया।

"यह क्या करता है?" बसंत ने पूछा।

"मैं टार्जन हूँ। इस लड़की को शेर से बचा रहा हूँ" गुड़िया की ओर इशारा कर कुँवर बोला।

"अच्छा चलो घर चलें। यह लड़की भी घर लिये चलो। शादी कर लेना इससे।" बसंत ने मुस्कुरा कर कहा।

"हाँ अब तो घर ही चलना चाहिए" कंतो बोली "क्यों कुँवर?"

"श्योर!"

कुछ दूर चलने के बाद बसंत ने एक ताँगा किया। राजू, मीना आगे और कंतो बसंत पीछे की सीट पर बैठे। कुँवर ने बसंत की गोद में आसन जमाया। ताँगा चलते ही बच्चे जोर से हँस पड़े।

'सिविल लाइंस बहुत अच्छी है। हम यहाँ रोज आएंगे।"

कुँवर बोला लेकिन उसकी आवाज जैसे घोड़े की टापों ने कुचल दी। ताँगा धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। सिविल लाइंस पीछे छूटने लगी। बच्चे आपस में बातचीत करने लगे, लेकिन कंतो बसंत अपने में ही खोये रहे। कंतो के बंगले के सामने राजू के आदेशानुसार ताँगा रुका। कंतो और

बसंत की विचार शृंखला न टूटी। कंतो को हाथ से हिलाकर राजू बोला, "सुनिए जी। अपने घर जाइयेगा कि हमारे।"

कंतो चौंक उठी। इस मजाक से कंतो ही नहीं बसंत भी कुछ झेंप गया। कुँवर को आगे की सीट पर बिठा कर दोनों ताँगे से उतरे और बँगले की ओर चले। फाटक पर पहुँच कर बसंत बोला, "देखो राजू बच्चों का ध्यान रखना। मैं अभी आया एक मिनट में।"

"हाँ-हाँ छोटे भैया।" राजू ने फिर मज़ाक किया "आप जाइए और जब जी चाहे लौटिए। मैं पूरा ध्यान रखूँगा।"

"दुष्ट कहीं का" झेंपता हुआ बसंत दबी जबान में बोला और कंतो के साथ बँगले के अन्दर जाने लगा।

छोटे से बँगले में काफी सन्नाटा था। बरामदे के बगल वाले कमरे में कुछ रोशनी थी। शेष सभी भाग अँधेरे मे डूबे थे। बँगले के सामने लॉन पर हल्की चाँदनी छिटकी थी। लान के किनारे लगी मेहदी काफी बड़ी मालूम होती थी, जैसे महीनों से उसकी काँट-छाँट किसी ने न की हो। कुछ क्यारियाँ सूखी थीं और कुछ के पेड़ निश्चल खड़े थे। लान की घास भी काफी बढ़ी लगती थी। कुछ अजब सा लगा बसत को। एक सिहरन सी दौड़ गई उसके तनमन में। "यह मकान भुतहा तो नहीं है ? हाँटेड हाउस ! नहीं !" उसने कंतो का हाथ जोर से पकड़ लिया।

लान के पास मौलश्री के छतनार पेड़ की छाया में बसंत रुक गया। चलते-चलते पैंट की जेब मे उसने हाथ डाला था। एक छोटा सा डिब्बा उसकी उँगलियों से उलझ गया था जिसे वह घर से सब की नज़र बचा कर लाया था। इस डिब्बे में एक हीरे की अँगूठी थी जो वह लंदन से कंतो के लिए लाया था।

उसने कंतो को अपनी बाहों में भर लिया और थोड़ी देर तक उससे उदास मुख को देखने के बाद बोला, "देखो अब मैं लंदन में नहीं इलाहाबाद में हूँ। और तुम भी यहाँ अकेली नहीं हो। जो भी मुसीबत आयेगी हम साथ-साथ उसका सामना करेंगे और देखो अगली पूर्णिमा की बात न

भूलना। और यह लो एक खिलौना तब तक घड़ियाँ काटने के लिए।" उसने अँगूठी कंतो को पहिना दी। कंतो अँगूठी अपनी छाती से लगा ली। आँसू की दो बूँदे उसके कपोलों पर ढुलकने लगी। बसंत ने अपने ओंठ उसके ओंठ पर रख दिये और एक गहरा चुम्बन लिया।

"अच्छा अब जाओ, बेकार की चिन्ताओं में अपना दिमाग न खराब करना" बसंत ने उसके गाल अपनी उँगलियों से थपथपा कर कहा, "चुपचाप आँख बन्द कर सो जाना, अगली पूर्णिमा का सपना देखती हुई।"

फाटक के बाहर आकर बसंत ने धीरे से कहा, "गुड नाइट मीठी लड़की"

"गुड लक निरदई" कंतो गुनगुनाती हुई बोली।

बसंत के बैठते ही ताँगा चल पड़ा। कुँवर आगे की सीट पर सो गया था। राजू और मीना कुछ बातचीत कर रहे थे। एक सिगरेट जला कर बसंत ने दो-चार कश लगातार लिए।

इस वक्त अपने घर जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। सिविल लाइस की चहल-पहल रोशनी, रंगीनी और कंतो के हँसी मजाक में वह अपने उजड़े घर को, दुखी घरवालों को और अपनी चिन्ताओं को भूल सा गया था। ताँगे पर बैठते ही उसे इन सभी का साहसा फिर ध्यान आ गया। उसके मुख पर फिर उदासी सी छा गई। मन का दर्द करवटें बदलने लगा। अपने और कंता दोनों के घर से वह कहीं दूर जाना चाहने लगा। लेकिन कहाँ? और कैसे जा सकता है वह। घर तो जाना ही होगा।

वह सड़क के किनारे बने बँगलों की ओर देखने लगा। अधिकांश में अँधेरा था। किसी-किसी में एक आध रोशनी दिखायी पड़ती थी। कभी-कभी रेडियो पर आने वाला गीत सुनायी पड़ जाता था। सड़क खामोश थी।

"ताँगे वाले कोई गीत सुनाओ" वह बोला—

"गीत? गीत तो भूल गया है साहब। ऐसा बुरा दिन आ गया है। खाना कपड़ा को चिंता करें कि गीत गाएँ। महँगी इतनी बढ़ गई है। दो तीन रुपया रोज जो मिलता है उसी में खुद खायें, बाल बच्चों का पेट पालें, इस घोड़े को खिलायें, कपड़ा-लत्ता दवा-दारू और बाकी सभी खर्चों का इन्तजाम करें।

कमर टूट गई है बाबू जी और आप कहते हैं कि गीत सुनाऊँ ? जब तक ताँगा घोड़ा चलता है चलाऊँगा। वैसे तो अब "राम नाम सत्य है" का दिन आ गया चल बे घोड़े !" और उसने कस कर एक चाबुक घोड़े को मार दी। घोड़ा दो-चार कदम चल कर फिर घिसट-घिसट कर चलने लगा।

"भैया मैं इंजीनियरिंग पढ़ूँगा" राजू ने कहा।

"क्या ?" बसंत चौंक कर बोला, "हाँ-हाँ, जरूर पढ़ना, जरूर" और वह फिर खोया-खोया सिगरेट पीने लगा।

"लेकिन भाभी कहती हैं कि उसमें बहुत रुपया लगता है।"

"तू रुपए के लिए क्यों परेशान होता है रे ?"

मन लगा कर पढ़ा कर। अच्छे डिवीज़न में पास हुआ कर। बाकी सब देखने के लिए तो मैं हूँ ही।"

"चाचा मैं भी पढ़ूँगी। एम० ए० तक। संगीत भी सीखूँगी।"

मीना के मन की बात भी मौका देख निकल गई।

"हाँ-हाँ तुम भी पढ़ना।"

"छोटे भैया घर के सब लोग मुझसे क्यों नाराज़ रहते हैं ? क्यों डाँटते हैं मुझे ? बड़े भैया तो कभी-कभी मार भी देते हैं" राजू ने इस तरह पूछा जैसे यह प्रश्न बहुत दिनों से उसके दिमाग में चक्कर लगा रहा हो।

"तू किसी का कहना न मानता होगा। पढ़ता-लिखता न होगा।" बसंत ने जवाब दिया लेकिन उसे लगा कि वह गलत बात कह रहा है। वाक्य खतम होते ही मीना ने विरोध किया, "राजू चाचा तो ऐसा नहीं करते। सब का कहना मानते हैं। खूब पढ़ते हैं। घर के बाहर नहीं घूमते। फिर भी सब लोग उन पर चिल्लाते ही रहते हैं। मुझे भी जब देखो तब कोई न कोई डाँटता ही रहता है।"

"अच्छा मैं सब को समझा दूँगा" बसंत ने दबी जबान में जैसे अपनी पहली बात वापस लेते हुए कहा।

ताँगा वाला कुछ गाने लगा था, लेकिन गीत के शब्द साफ सुनायी नहीं

पड़ते थे। बसंत ने उससे कहना चाहा, "खुलकर गाओ यार" पर न जाने क्यों वह खामोश ही रहा।

ताँगे वाले की आवाज सड़क के किनारे लगे पेड़ों से टकरा कर एक तूफान सा उठाने लगी। बहुत दर्द से भरी थी वह। रात में रोती बिल्ली की आवाज की तरह विलाप कर रही थी। बसंत का रोम-रोम काँपने लगा। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसे डर सा लगने लगा। फिर भी वह न जाने क्यों डूबना चाहने लगा इस आवाज में। मन के किसी कोने को कुछ अजब सी शांति मिलने लगी। इस आवाज में उसे न जाने क्यों एक अपनापन सा मिलने लगा।

गाना जारी है। ताँगे वाला बार-बार कोई पंक्ति गाता है। दूने चौगुने अठगुने दर्द से गाता है। कभी धीरे, कभी जोर से, कभी पंक्ति को तोड़-मरोड़ उलट फेर कर। घोड़े की टापें गीत को हंटर सा मार रही हैं। यह हंटर बसंत के सीने पर भी पड़ रहा है। गीत से रह-रह कर उठने वाली कराह उसके मन की पुकार से काफी मिलती-जुलती है। वह चाहता है, यह रास्ता कभी खतम न हो। यह गीत कभी बंद न हो। घर कभी न आए।

"ताँगा रोको।" राजू ने कहा "भैया घर आ गया। उठिये।"

बसंत चुपचाप ताँगे से उतरा। बच्चों को उतारकर उसने ताँगे वाले का किराया दिया और एक ठंडी साँस ली। बच्चे अपना-अपना सामान लेकर खुशी से चीखते-चिल्लाते घर के अन्दर चले गए।

ताँगे वाला उसी तरह कुछ गुनगुनाता चला जा रहा था। थोड़ी देर तक उसकी आवाज सुनने के बाद बसंत ने घर में प्रवेश किया। आँखें जमीन की ओर, कंधे झुके, मन भारी, चेहरे पर उदासी, माथे पर चिन्ता की टेढ़ी-मेढ़ी अनेकों रेखाएँ। वह बहुत धीरे-धीरे चल रहा है।

८

बैठक के दरवाजे के पास पहुँच कर बसंत ने देखा कि मास्टर साहब तखत पर सो रहे हैं और पास ही पड़ी दो कुर्सियों में से एक पर उसका बाल मित्र जगदीश बैठा है। बसंत दौड़कर कमरे में घुसा और जगदीश कुछ बोले इसके पहले ही उसने उसको कुर्सी से उठाकर बाँहों में भर लिया। थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरे की बाँहों में भरे खड़े रहे।

"हलो बसंत !"

"जग्गू" उतनी ही पुलकन से बसंत बोला।

"बहुत दिन बाद मिले हैं दोस्त !"

"हाँ भाई बहुत दिन बाद। चलो बाहर बैठें" बसंत ने एक ठंढी साँस भर कर कहा। दोनों ने एक-एक कुर्सी उठा ली और बाहर केले के पेड़ के पास रख कर थोड़ी देर तक आँगन में टहलते रहे।

"लो सिगरेट पियो" बसंत ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई जगदीश की ओर बढ़ायी।

"सिगरेट" जगदीश ने कुछ अनमने मन से कहा।

"अच्छा लाओ पीऊँ। मैं तो अब बीड़ी पीने लगा हूँ। एक सौ बत्तीस रुपए महीने का क्लर्क हूँ। सिगरेट पीऊँ या घर का खर्च चलाऊँ।"

"आओ बैठें" कह कर बसंत कुर्सी की ओर बढ़ा। दोनो आमने-सामने कुर्सियों पर बैठ कर सिगरेट पीने लगे।

"घर का क्या हाल-चाल है जग्गू" बसंत ने पूछा।

"घर ? हाँ ठीक ही है। ठीक ही होगा। मैं तो सबेरे सूरज निकलने के पहले ही घर से दफ्तर के लिए निकल पड़ता हूँ। सूरज डूबने के बाद वापस लौटता हूँ। कभी-कभी रात दस बज जाते हैं। फिर गृहस्थी का रोना-धोना, नोन, तेल, लकड़ी की बात जो घर-घर लगी है, मेरे यहाँ भी

है। दफ्तर से इतना थका हुआ लौटता हूँ कि खाना खाते ही बिस्तर पर लेट जाता हूँ। दफ्तर नहीं नर्क है।"

"तुम्हारी अम्मा कैसी हैं? पत्नी कैसी हैं? कितने बच्चे हो गए अब?" बसंत ने पूछा।

"कह तो दिया भाई" जगदीश ने कुछ ऊब कर कहा, "सब ठीक ही होंगे—बीमारी लगी ही रहती है किसी न किसी को। पत्नी है कि हर साल एक बच्चा पैदा ही किये जाती हैं। चार बच्चे हो गए हैं अब तक पाँचवाँ पेट में है। पता नहीं कितने और होंगे। घर नहीं मछली बाजार हो गया है!"

"जन्म कंट्रोल का प्रयोग क्यों नहीं करते?"

"जाने भी दो डाक्टर किस-किस पर कंट्रोल करूँ। एक यही समस्या थोड़ी है। तुम बताओ अपना हाल-चाल।"

बसंत ने सिगरेट पैर के नीचे दबा कर बुझाते हुए कहा, "मैं। मैं भी ठीक ही हूँ। मोहन का क्या हाल-चाल है?"

"मोहन?" जग्गू हँसकर बोला, "खेती कर रहा है आजकल। कोई नौकरी नहीं मिली उसे यहाँ कहीं शहर में!"

"खेती कर रहा है? नौकरी नहीं मिली? लेकिन वह तो बड़ा तेज विद्यार्थी था। हमेशा फर्स्ट डिवीज़न पाया है" बसंत ने कुछ आश्चर्य से कहा।

"हाँ ठीक है" जग्गू ने एक ठंडी साँस ली, "कई कम्पीटीशन में बैठा। लिखित पर्चों में बहुत अच्छे नम्बर लेकिन इंटरव्यू में—काफी कम मिले उसे। बड़ी बेईमानी करते हैं यह इम्तहान लेने वाले। अपनी-अपनी जान-पहिचान या सिफारिश वाले लड़कों को ज्यादा नम्बर दे देते हैं। दूसरों को बहुत ही कम देते हैं इस तरह वे लायक लड़के असफल, अयोग्य करार दिये जाते हैं। अरे अक्सर लिखित पर्चों में भी नम्बर बढ़ा देते हैं कहने-सुनने पर। कम्पीटीशन में असफल होने पर बेचारे मोहन ने कई स्थानों में और कोशिश की लेकिन उसके पास कोई सिफारिश तो थी नहीं, इसलिए नहीं लिया गया। एक रात को अपनी सब किताबें-कापियाँ एक जगह जमा कर आग लगा दी उसने और सबेरा होते ही अपने गाँव के लिए चल

पड़ा। अब खेती करता है। सिर पर अंगौछा बाँधता है। बिल्कुल देहाती बन गया है। तुम पहिचान तक न सकोगे उसे।"

बसंत ने एक दूसरी सिगरेट जलायी। जगदीश ने अपनी जेब से बीड़ी का एक बंडल निकाल कर एक बीड़ी सुलगायी।

"तो मोहन अब खेती करता है" बसंत धीरे-धीरे बोला—"और, और अमरनाथ कहाँ है?"

उत्तर देते हुए जग्गू ने कहा "अमरनाथ तो यहीं है। राशनिंग विभाग में जूनियर इन्सपेक्टर है। दिन-दिन भर साइकिल पर दौड़ा करता है। सुना है काफी रिश्वत लेने लगा है अब—शराब भी पीने लगा है। कभी-कभी रंडी के कोठे पर भी देखा गया है। घर में उसके भी दिन-रात लड़ाई-झगड़ा मचा रहता है। रात में शराब पीकर लौटता है तो बीबी को, बच्चों को, जो भी सामने मिला पीटने लगता है। बच्चे दिन भर आवारा घूमते हैं। बीबी अक्सर मायके चली जाती है। इन्सपेक्टर की दुम!"

कुछ रुककर जग्गू ने हँसते हुए कहा, "और जानते हो तुम्हारे दोस्त मिस्टर भैरो राम ने पान की दुकान कर ली है। साइकिल का पंचर भी बनाते हैं। उनका कहना है कि क्लर्की, मास्टरी, पत्रकारिता आदि सभी पेशों से ज्यादा पैसा वह उस दूकान से रोज कमा लेते हैं। मुझको भी रिक्शा चलाने की राय देते थे। कहते थे क्लर्कों से ज्यादा उसमें पा जाऊँगा। चौक में घंटाघर के पास उनकी दूकान है। कभी उधर जाना तो उसी के यहाँ पान खाना। बेचारा पुराना दोस्त है। बड़ी खातिर करता है। बड़ा अच्छा पान लगा कर खिलाता है। लेकिन पैसा ले लेता है। कहता है, 'पार्टनर, बिजनेस इज बिज़नेस।' अच्छा अब चलूँगा भाई! कल सबेरे दफ्तर भी जाना है" जग्गू ने कुर्सी से उठकर एक अँगड़ाई ली। बसंत भी उठ खड़ा हुआ।

फाटक के पास पहुँच कर बसंत ने पूछा, "रामचन्द्र का भी कोई पता है जग्गू?"

"हाँ, वह भी यहीं है" जग्गू बोला, "नैनी के पास एक शीशे की मिल

में मुनीम है आजकल। बेचारा बहन की शादी के पीछे बहुत परेशान रहता है। लड़के वाले दहेज बहुत माँगते हैं। यह पढ़े-लिखे लड़के दहेज की रकम आजकल खुद तय करने लगे हैं। सूरत न शकल। दस-दस बार फेल होकर बी० ए० पास करेंगे। नौकरी का कहीं ठिकाना नहीं और माँगेंगे टेन थाउजेंड ! दस हजार ! इनको एक लाइन में खड़ा कर हण्टर लगाये जायें तब इनका दिमाग ठीक हो। नामर्द। जवानी शुरू होने के पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। सीना धँस जाता है। कमर झुक जाती है। आँखें गढ़े में घुस जाती हैं। बाल झड़ने लगते हैं। कुकर्मी ! शादी के लायक नहीं रह जाते। लेकिन झेंप कर, लजा कर माँगेंगे दस हजार ! और वह मिल मालिक अलग बेचारे रामचन्द्र को परेशान किये रहता है। तनख्वाह कम, छुट्टी नदारद, काम दिन-रात डाँट-फटकार ऊपर से, जैसे उसका गुलाम हो वह। इन सब तोंद वालों को हाथ-पैर बाँध कर चित लिटा दे, फिर इनकी नाभी में छेद करके उसमें बारूद भरे और दिया-सलाई लगाकर उड़ा दे ! साले चोर भ्रष्टाचारी ब्लैक मार्केटियर ! अच्छा भाई चलता हूँ।"

गुड नाइट कह कर जग्गू बिना बसंत की ओर देखे चल पड़ा।

"गुड-नाइट" बसंत ने कहा और अँधेरे में खोते जग्गू को देखने लगा। जग्गू का फटा पाजामा, टूटी चप्पल, आधी बाँह की फटे कालर वाली कमीज, बिखरे बाल, बढ़ी दाढ़ी, पिचके गाल, फड़कते ओंठ, रह-रह कर भभक उठने वाली धँसी आँखें, तेज आवाज, गालियाँ, बीड़ी का धुआँ, सभी मिल-जुलकर एक मुर्दा साँप के गीले बदन से उसके चारों ओर लिपटने लगे। उसका जी मचलाने लगा। आँगन में लगे पाइप से उसने मुँह धोया, गला साफ किया और गीली उँगलियाँ बालों पर फेरता हुआ दबे पाँव घर के अन्दर पहुँचा ! उसके मुख की उदासी, माथे की रेखाएँ और मन का भारीपन कुछ और बढ़ गया था।

६

घर के अन्दर एक सन्नाटा सा छाया था। सुमंत तथा बसंत के कमरों में अँधेरा था। रसोई में एक तेल की कुप्पी धुप-धुप कर जल रही थी। उसका तेल खतम हो रहा था। अम्मा के कमरे मे भी हल्की रोशनी हो रही थी। दालान से बसंत ने देखा कि बीना आँखे बन्द किये चारपाई पर लेटी और अम्मा पूजा में लीन हैं।

चाँदनी में हरसिंगार का पेड़ कभी-कभी डोल उठता है। आकाश में बादल की सुरमई चादर गले तक ओढ़कर लेटे चाँद का मुख कुछ पीला और उदास सा मालूम पड़ता है। ऊपर के कमरे में राजू बाँसुरी बजा रहा है। हरसिंगार के पेड़ के पास तारा एक आराम कुर्सी पर बैठी आकाश की ओर देख रही है। बाँसुरी की आवाज के साथ-साथ वह कुछ गुनगुना भी रही है। कुछ देर तक कुर्सी के पीछे खड़े रहने के बाद बसंत ने कहा, "भाभी। जरा खुल कर गाओ न!"

"ओह तुम आ गए!" तारा ने चौंककर कहा, "मुझे तो ध्यान ही नहीं था। कितनी देर हुई आये? राजू बहुत अच्छी बाँसुरी बजा रहा है। लेकिन पता नहीं क्यों ऐसा लगता है कि इस बाँसुरी में उसके आँसू बोल रहे हैं। लगता है राजू नहीं हमारा यह घर बाँसुरी बजा रहा है।"

कुछ देर रुक कर वह बोली, "अच्छा चलो खाना तो खालो।"

"भूख नहीं है भाभी सिविल लाइंस में काफी खा लिया है" बसंत ने उत्तर दिया मानो वह किसी संकट से दूर भागना चाहता हो।

"थोड़ा सा खा लो भूख तो मुझे भी नहीं है" तारा ने अनुरोध किया।

"बिलकुल भूख नहीं है भाभी।"

"अच्छा एक प्लेट खीर तो तुम्हें खानी ही पड़ेगी" तारा कुर्सी से उठती हुई बोली और रसोई की ओर चली। बसंत दूसरी कुर्सी पर बैठ गया। तारा दो

गिलास पानी और दो प्लेट खीर ले आई। पानी के गिलास छोटी मेज पर रखकर एक प्लेट उसने बसंत को दी और एक खुद लेकर आराम कुर्सी पर बैठ गई।

"खाओ" वह बोली चम्मच में खीर उठाते हुए, "पता नहीं क्यों आज जैसे सब की भूख मर सी गई है। राजू मीना कुँवर ने नहीं खाया। वीना ने भी नहीं खाया सिर्फ एक प्याली चाय पी है। अम्मा जी तो पूजा पाठ में ही लगी हैं। छह बजे शाम से जो बैठी हैं तो अभी तक ध्यान नहीं टूटा है। लगता है सवेरे तक पूजा करेंगी। आपके भय्या और बाबू परसी थाली छोड़ कर उठ गए। कुछ कहा सुनी हो गई दोनों में। जब शोर गुल सुनकर उन दोनों के पास दालान में पहुँची तो देखा कि बाबू आँखे भरे थाली छोड़कर उठ रहे हैं और आपके भय्या कह रहे हैं, 'मैंने घर भर के खर्चे का ठेका नहीं लिया है, सब लोग अपना-अपना इन्तजाम करते जायें।' बाबू आँखें पोंछते हुए बाहर बैठक में जाकर लेट गए और आपके भय्या गले का कौर पानी से उतार कर अपने कमरे में चले गए। मैंने लाख पूछना चाहा लेकिन आपके भय्या ने कुछ बताया ही नहीं। चुप पड़े रहे। बस कभी-कभी यही कहते रहे, 'मेरी जान छोड़ दो तारा। मेरी जान छोड़ दो। मेरे पास अब कुछ नहीं बचा है। मेरी हड्डियाँ और चमड़ा कोई खरीदे तो घर का खर्चा चला लो बाबा। लकड़ी न मिले तो मुझे चूल्हे में लगा दो। लेकिन मेरी जान छोड़ दो।' मैं क्या करती हार कर चली आई! बाबू के पास गई तो वह रोने लगे मुझे पकड़ कर और कहने लगे, 'तारा बेटी तू तो नहीं नाराज है मुझसे। मैं तो सदा का अभागा हूँ। बोझ सा बन गया हूँ इस घर पर। भगवान मुझ पापी को मौत भी नहीं देते। लेकिन मैं क्या करूँ बेटी अपाहिज हो गया हूँ। बाप को लाचार हो जाने पर अपने लड़कों बेटों का ही तो आसरा रहता है। हाय रे मेरी तकदीर! यह दिन भी देखना पड़ा। भगवान, दीनबन्धु, उठा लो मुझे। उठा लो पतितपावन। मेरी सुधि लो। खाना नहीं खाऊँगा। आज से तू मेरी जगह सड़क के कुत्ते को खिला दिया कर। बस तू बैठी रह। इसी तरह मेरे पास थोड़ी देर और बैठी रह बेटी। तू बड़ी अच्छी है तारा। घर की लक्ष्मी है। तू न होती तो यह मनहूस घर कब का रसातल को चला गया होता। हे भगवान दीनानाथ

पतित पावन । संकट काटो । अब तो बहुत नचा चुके गोपाल । हाय ! हाय ! हाय रे आनन्द कुमार पैदा होते ही क्यों न मर गये तुम ।'

जब बच्चे सिविल लाइंस से लौटे तब बाबू और आपके भैया दोनों अपने-अपने कमरों से निकल कर आँगन में आये । बच्चों से दोनों सिविल लाइंस का हाल पूछते रहे । लेकिन बात आपस में बाप बेटे ने नहीं की । दोनों गुमसुम फिर अपने-अपने कमरे में जाकर लेट रहे हैं ।"

"बाबू और भय्या में झगड़ा तो पहली ही बार यह सुनने में आ रहा है भाभी" बसंत बोला, "भैया तो बाबू को उलट कर जवाब तक नहीं देते थे ।"

"हाँ, पहले तो यही था", तारा बोली, "लेकिन इधर न जाने क्या होता जा रहा है आपके भय्या को । घर के किसी भी काम-काज या आदमी में दिलचस्पी नहीं लेते । पहली तारीख को जो तनखाह मिलती है, चुपचाप दे देते हैं और फिर महीने भर वह हैं, दफ्तर है और उनका कमरा है । कभी-कभी झल्ला कर चिल्लाने लगते हैं । कभी-कभी बेहद गुस्सा होकर बच्चों को मारने लगते हैं, फिर यह नहीं देखते कि बच्चे के कहाँ चोट लग रही है, कितनी लग रही है, वह मरेगा या जीता बचेगा ।"

कुछ रुक कर तारा ने फिर कहना शुरू किया, "अरे आपके भय्या क्या । हम सभी को न जाने क्या होता जा रहा है । अच्छा अगर मैं कम्पाउंडरी सीख लूँ तो कैसा रहे । तुम्हें एक कम्पाउंडर की जरूरत तो पड़ेगी ही । मैं रहूँगी तो कुछ पैसा बच जायेगा । घर के काम आ जायेगा, सुबह-शाम तुम्हारे दवाखाने में कम्पाउंडरी करूँगी । स्कूल तो दोपहर को जाती हूँ ।" बोलते-बोलते वह बीच में ही रुक गई । बसंत फीकी हँसी हँसता हुआ बोला, "हाँ-हाँ कहे चलो भाभी कि स्कूल तो तुम दोपहर में जाती हो । मुझे मालूम हो गया है कि तुम स्कूल में मास्टरी करती हो ।"

"क्या" तारा चौंक कर बोली । बसंत कहता गया "और यह भी मालूम हो गया है कि अम्मा रात-रात भर मुहल्ले वालों के कपड़े सीकर घर के खर्चे के लिए पैसा पैदा करती हैं ।"

तारा का चेहरा सफेद पड़ गया । बसंत ने एक सिगरेट जलायी । दोनों

चुपचाप कभी आकाश की ओर और कभी जमीन की ओर देखने लगे। कुछ देर बाद—

"और कहो भाभी" बसंत बोला—

"घर की हालत सुधरनी चाहिए" तारा ने कहा—

"हाँ" घर की हालत सुधरनी चाहिए" धीरे से बसंत ने कहा—

"बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए" तारा बोली—

"हाँ मिलनी चाहिए" बसंत बोला। उसकी आवाज कुछ कम हो गई थी।

"बीना की शादी होनी चाहिए।"

"होनी चाहिए" बसंत ने कहा। उसकी आवाज और कम हो गई।

"अम्मा बाबू को ज्यादा से ज्यादा आराम मिलना चाहिए।"

"हाँ" बसंत की आवाज खो सी गई।

"तुम्हें क्या हो गया है।" तारा ने शंकित स्वरों में पूछा—

"कुछ तो नहीं।" बसंत बोला।

"कंतो से मिले थे" तारा ने फिर पूछा—

"हाँ, कंतो से मिला था" बसंत ने पहले की ही तरह धीमी आवाज में कहा।

"क्या बातें हुईं।"

"यही इधर-उधर की" बसंत बोला। उसकी आवाज फिर कम हो गई थी।

"कुछ शादी ब्याह की भी बात हुई" तारा ने पुलक कर कहा।

बसंत ने धीरे से कुछ कहा, लेकिन उसके शब्द किसी के खाँसने की आवाज में खो गए। बीना बड़ी जोर से कराहती हुई कमरे में खाँस रही थी। इस आवाज से दोनों चौंक उठे और कमरे की ओर भागे। कमरे में पहुँच कर उन्होंने देखा कि अम्मा निश्चल पूजा में लीन हैं और बीना चारपाई की पाटी पर जमीन की ओर सिर लटकाये औंधी पड़ी हाँफ रही है। उसके मुँह के नीचे जमीन पर काफी मात्रा में बलग़म पड़ा है जिसमें लाल-लाल खून के बड़े-बड़े चकत्ते चमक रहे हैं। तारा ने बीना को सीधा कर उसका सिर तकिये पर रख

दिया और पंखे से हल्की-हल्की हवा उसके मुँह पर करने लगी। बीना का हाँफना कम होने लगा, लेकिन वह सिसकियाँ लेने लगी। बीना काँप रही है, जैसे दुबली-पतली जर्जर पीली पतझड की पत्ती तेज हवा में काँपती है, डाल से टूटने के पहले। खून के चकत्ते और बीना का मुँह देखकर बसंत का रोम-रोम काँप उठा, दाँत कटकटा उठे, आँखे फैल गईं, आवाज खो गई।

"बी-नी" कह कर वह बीना से लिपट गया।

"भय्या" बीना फूट-फूट कर रोने लगी।

"चुप रह बीनी, चुप रह" रोता हुआ बसंत कहने लगा, "तू अच्छी हो जायेगी। बिलकुल अच्छी हो जायगी। बिलकुल अच्छी हो जायगी, पगली! रो मत, मैं तुझे अच्छा कर दूँगा। अब कोई डर नहीं है। मैं आ गया हूँ। रानी बहन चुप हो जा, चुप हो जा। मेरी गुड़िया तुझे किसने ऐसा कर दिया रे।"

"तुम खुद तो चुप हो जाओ बसंत। उठो कुछ दवा दो और बीना तू भी चुप हो जा। अभी ठीक हो जायेगी पगली" तारा ने उसके गाल थपथपा कर आँसू पोंछते हुए कहा।

"सच भाभी!" बीना की आँखे चमक उठीं।

"और नहीं क्या, तुझे हुआ ही क्या है।"

"तुम बड़ी अच्छी हो भाभी" बीना ने धीरे से कहा, "लेकिन सीने में बहुत दर्द हो रहा है। साँस नहीं ली जाती है। सिर में भी दर्द है। हाथ, पैर टूट रहे हैं भाभी।"

बसंत आँखे पोंछता हुआ उठा। उसने देखा दरवाजे पर मास्टर साहब खड़े हैं।

"बीना कैसी है" उन्होंने दबे स्वरों में पूछा।

"बिलकुल ठीक है बाबू" बसंत ने उन्हें सहारा देकर बीना की चारपाई पर बिठा दिया।

"हाँ बाबू। भय्या कहते हैं कि मैं बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी" बीना ने कराहते हुए कहा, 'है न भय्या?"

"हाँ बीना" बसंत बोला लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी नजर फर्श पर पड़े बलगम पर पड़ी जिसमें लाल चकत्ते चमक रहे थे। वह सिहर उठा।

"भाभी बहुत दर्द हो रहा है" बीना कराहकर बोली।

"अभी ठीक होता है" बसंत ने उसे समझाते हुए कहा, "भाभी सरसों का लेप हो तो इसके सीने पर लगा दो और इसके थूकने के लिए यहाँ कोई बर्त्तन रख दो।

तारा उठ कर कमरे से बाहर चली गई। मास्टर साहब ने एक हाथ से बीना का हाथ पकड़ लिया और दूसरे से उसका माथा सहलाने लगे, "मेरी बच्ची। मेरी बच्ची" वह अस्पष्ट शब्दों में बड़बड़ाने लगे। बीना का कराहना क्षण-क्षण बढ़ने लगा। "अम्मा। अम्मा।" वह धीरे-धीरे पुकार रही थी। और अम्मा पूजा में निश्चल लीन थी। बसंत ने एक टूटे प्याले में जमीन पर पड़ा बलगम एक कागज से उठा कर रखा और कमरे के बाहर आया। उसने घर के बाहर केले के पेड़ के नीचे प्याला कागज से बन्द कर रखा और अन्दर आँगन में आकर राजू को पुकाने लगा, "राजू! ओ राजू!"

"जी भय्या" राजू ने नींद में डूबी आवाज में कहा।

"अच्छा" राजू के स्वर से लगा कि उनकी नींद भाग गई थी। बसंत ने सुना, सुमंत अपने कमरे में बड़बड़ा रहा था, "रात को भी नाक में दम। एक मिनट सोने नहीं देते। खों-खों, खों-खों। आफत मचा रखी है इसने। ससुरी मर भी नहीं जाती।"

"भय्या" बसंत दर्द से चीख उठा

"क्या हाय-हाय मचाये हो" सुमंत चिल्लाकर बोला।

"भय्या बीना की तबीयत ठीक नहीं है।"

"तो मैं क्या करूँ, डाक्टर तुम हो कि मैं? मेरी जान क्यों खाये हो?"

राजू नीचे आ गया था। उसके हाथ से बक्स लेकर बसंत बीना के कमरे की ओर चला। उसने अपने कान बन्द करने की कोशिश की, "मर भी नहीं जाती ससुरी, चुड़ैल, डाइन!" सुमंत बड़बड़ा रहा था।

कमरे में पहुँच कर उसने देखा कि तारा बीना के सीने पर लेप लगा

रही थी। बाबू एकटक बीना की ओर देख रहे थे और बीना रह-रह कर कराह रही थी।

"बस तेरा दर्द अभी जाता है बीना" कहकर वह बाक्स खोलने लगा। बाक्स से उसने इंजेक्शन देने की सिरींज निकाली जिसे देखकर बीना ने आँखें बन्द कर ली।

स्पिरिट लैम्प जला कर उसने थोड़ा सा पानी गरम किया और सिरींज साफ की। एक शीशे के ट्यूब से सिरींज में उसने दवा भरी और सिरींज लेकर बीना की ओर चला।

"भय्या बड़ा दर्द होगा ?" बीना ने चीखकर कहा।

"दर्द नहीं होगा पगली" बसंत बोला, "दर्द तो कम हो जायेगा इसके बाद। भाभी तुम इसका हाथ जरा पकड़ लो।"

तारा ने काँपते हुए बीना का हाथ पकड़ लिया। मास्टर साहब ने ओंठ कसकर बंद कर लिये, बीना ने आँखें बन्द कर ली, तारा ने दृष्टि दीवाल की ओर कर ली और बसंत ने धीरे से सिरींज की सुई बीना की दुबली-पतली जर्जर दाहिनी बाँह में घुसेड़ दी।

"आह" बीना कराह उठी।

बीना की कराह खतम भी न होने पाई थी कि बसंत ने उसकी बाँह से सुई निकाल ली।

"बस खतम" बसंत ने उसे मुस्कराकर झिड़कते हुए तथा उसकी बाँह पर टिञ्चर लगाते हुए कहा "बड़ा लगेगा, बड़ा लगेगा। झूठी लगा कुछ! हुआ दर्द ?"

उत्तर में बीना ने मुस्करा दिया।

"अब तेरा दर्द भी कम हो जायेगा और नींद भी आ जायेगी तुझे।" बसंत ने इंजेक्शन की सिरींज और स्पिरिट लैम्प रख कर अपना इमरजेंसी बाक्स बन्द करते हुए कहा....

"किस चीज का इंजेक्शन दिया बसंत ?" मास्टर साहब ने पूछा।

"मार्फिया का, थोड़ी देर में इसे नींद आ जायेगी।"

सिरहाने बैठी तारा बीना का सिर दबाने लगी। चारपाई पर एक किनारे बैठे मास्टर साहब फिर बीना को एकटक देखने लगे। बसंत ने एक बार बीना की ओर देखा, कुछ सोचा और जेब से पर्स निकाल कर खोला। उसने देखा कि पर्स में केवल १० रुपए का एक नोट और कुछ फुटकर पैसे बचे हैं। राजू को नोट देते हुए उसने कहा, "देख राजू। किसी दवा की दुकान से कोएगलीन के दो तीन ट्यूब तो खरीद ला। कहना इंजेक्शन देने के लिए चाहिए। जल्दी आना। डर तो नहीं लगेगा रास्ते में ?"

"नहीं" राजू ने नोट लेते हुए कहा, "डर किसका"

"और जायेगा कैसे" बसंत ने पूछा।

"दौड़ता हुआ चला जाऊँगा" राजू दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ बोला।

"ठहर-ठहर" बसंत ने पर्स का फुटकर पैसा भी उसे देते हुए कहा, "कोई रिक्शा कर लेना और जल्दी आना। और नाम याद है न इंजेक्शन का," "हाँ, कोएगलीन" राजू ने कहा और कमरे से निकल गया। बसंत ने कुछ देर पर्स को देखा फिर अम्मा की पूजा की चौकी के पास फेंक दिया। पर्स फेंकने के बाद उसकी दृष्टि बीना की चारपाई के पैताने गुमसुम खड़ी मीना और कुँवर तथा अम्मा की चारपाई पर सिर झुका कर बैठे सुमंत पर पड़ी।

"अरे ! मीना, कुँवर। तुम लोग कब से खड़े हो। जाओ सोओ बेटा ! बीना तो बिल्कुल ठीक है। जाओ" वह बोला।

"अभी जाते हैं" मीना बोली लेकिन वह गयी नहीं, उसी तरह खड़ी रही। कुँवर भी गुमसुम खड़ा रहा।

"और भैया आप भी जा कर सोइये सब ठीक है" बसंत ने सुमंत की ओर देख कर कहा।

"हाँ-हाँ, जाता हूँ। अभी जाता हूँ" सुमंत ने धीरे से कहा, लेकिन उसी तरह बैठा रहा।

"हाँ, जाओ—" मास्टर साहब कहते-कहते बीच में ही रुक गए। सुमंत ने मास्टर साहब की ओर देखा, उसके ओठ कुछ खुले, लेकिन अपनी

दृष्टि उसने दूसरे ही क्षण फिर जमीन पर गड़ा दी। बसंत भी सुमंत के पास जाकर बैठ गया।

कमरे में खामोशी छा गई है। बीना का कराहना बन्द हो गया है। आँखें बन्द किए वह पड़ी है। लगता है सो गई है। सभी चुप हैं, अपने-अपने विचारों में खोये हैं। फूटे शीशे वाली हरीकेन लालटेन कभी-कभी भभक कर जल उठती हैं जिससे दीवाल पर पड़ती छायाएं काँप-काँप कर अधिक भयानक हो जाती हैं। अम्मा पूजा में आँखें बन्द किये लीन हैं। चौकी पर जलते दीपक के अल्प प्रकाश में वह एक ऐसे सरोवर की तरह लग रही है जिसका सारा जल सूख गया हो और बदन भर में दरारें पड़ गई हों! सुमंत और मास्टर साहब एक दूसरे की ओर बार-बार देखने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन हर बार उनकी दृष्टि नहीं मिलती। मिलने के पूर्व ही वे आँखें झुका लेते हैं। दोनों रह-रह कर काँप उठते हैं। उनके ओठ खुलते-खुलते बन्द हो जाते है। दोनों के मन में एक तूफान उठ रहा है जो क्रमशः बढ़ता जाता है। सहसा अनजाने में दोनों की दृष्टियाँ मिल गईं। दोनों खड़े हो गए।

मास्टर साहब ने धीरे-धीरे कहा, "बूढ़े माँ बाप से नाराज़ नहीं हुआ करते बेटा" और वाक्य समाप्त होने के पहले ही सुमंत लपक कर पिता की छाती से लिपट कर रोने लगा।

"बाबू मुझे माफ कर दो"

"चुप हो जा बेटा" मास्टर साहब ने रोते हुए कहा।

सुमंत कहता जा रहा था, "न जाने क्या हो गया है हम सबको बसंत! तू तो बहुत बड़ा डाक्टर है। इंगलैंड से लौटा है भय्या। हम सब की बीमारी दूर कर दे। हम सब को अच्छा कर दे।"

बसंत को लगा किसी ने उसकी छाती में बेरहमी से तेज भाला घुसेड़ दिया।

तभी, "छोटे भय्या यह लो इंजेकशन" राजू ने हाँफते हुए कमरे में प्रवेश किया। मास्टर साहब और सुमंत आँखें पोछते हुये अलग हो गये। बसंत ने इंजेकशन लिया और इमरजेंसी बाक्स खोलने लगा।

उसने ट्यूब से सिरींज में दवा भरी और इंजेकशन लगाने के लिए बीना की चारपाई पर झुका। तारा ने बीना की बाँह पकड़ कर अपनी दृष्टि दीवार की ओर कर ली। मास्टर साहब ने ओंठ बन्द कर लिये। सुमंत अम्मा की ओर देखने लगा। केवल राजू बीना की ओर देखता रहा। बसंत ने जब इंजेक्शन लगाया बीना कराही नहीं। उसकी बाँह कुछ हिल उठी और एक हल्की सी चीख मीना और कुँवर के कंठों से निकल गई।

"अरे! तुम लोग अभी यहीं हो", बसंत ने बीना की बाँह पर टिंक्चर लगाते हुए कहा, "जाओ बेटा सोने। बीना तो बिल्कुल ठीक है। देखते नहीं सो रही है। जाओ अच्छे बच्चों की तरह सो जाओ और तुम भी जाओ राजू।"

"अच्छा" कह कर तीनों बच्चे कमरे के बाहर चले गए। सिरींज बाक्स में बन्द कर बसंत ने देखा कि मीना और राजू आँगन में घुटने के बल बैठ कर हाथ जोड़े आकाश की ओर देख रहे हैं। बसंत को कुछ अजब सा अनुभव हुआ। वह धीरे-धीरे उनके पास गया। उसने सुना, मीना कह रही थी, "भगवानजी बीना को अच्छा कर दो।"

कुँवर कह रहा था, "हाँ भगवान जी बीना को अच्छा कर दो। मैं तुम्हें अपना बंदूक दे दूँगा भगवान जी।"

दोनों की बातें सुनकर बसंत सिहर उठा। उसका गला भर आया। दोनों को अपने सीने से लगाते हुए वह बोला।

"उठो बेटा कुँवर। उठो मीना। बीना बिल्कुल अच्छी हो जायेगी। जाओ, जाओ सो जाओ।"

एक मिनट बाद उसने सुमंत को पुकारते हुए कहा, "भय्या, अब आप भी आइये। आप या भाभी दो में एक जब तक सोने नहीं जाएँगे ये बच्चे भी जागते रहेंगे।"

"हाँ जाओ बेटा तुम्हें कल दफ्तर भी जाना है।" मास्टर साहब की आवाज सुनायी पड़ी। सुमंत कमरे से निकल कर आँगन में आया और बसंत के पास खड़ा हो गया। दो मिनट बाद उसने जोर से बसंत को अपनी बाँहों

में जकड़ लिया और बोला, "बीना अच्छी हो जाएगी बसंत ! सच कहता है या मुझे भी बहका रहा है ?"

"भय्या आप सब चिन्ता छोड़ कर जाइये और बच्चों के साथ सो रहिए।"

"अच्छा अगर रात में बीना की तबियत जरा भी बिगड़े तो मुझे भी बुला लेना" कह कर वह काँपता हुआ बसंत से अलग हो गया।

"हाँ भय्या बुला लूँगा आपको। आप जाकर सो जाइएं। मेरा विश्वास करिये। बीना की तबियत अब ठीक हो रही है।"

सुमंत ने एक मिनट तक बसंत की ओर देखा, फिर कुँवर मीना के साथ अपने कमरे की ओर सिर झुका कर चल पड़ा।

बसंत ने एक अँगड़ाई ली और बादल में छिपते चाँद की ओर देखा। उसकी नज़र ऊपर वाले कमरे की ओर भी गई। राजू खिड़की से सिर निकाले नीचे देख रहा था, "अरे राजू, तू भी अभी नहीं सोया ?"

"सोता हूँ छोटे भय्या" कह कर राजू खिड़की से हटकर कमरे में खो गया ?"

आँगन से अम्मा के कमरे में आकर बसंत ने कहा, "बाबू अब जाइये, आप भी सो जाइये"

"नहीं, मैं यहीं रहूँगा। तुम्हारी अम्मा की चारपाई खाली है। तुम बहुत थक गये होगे, जाकर आराम करो और तारा बेटी, तू भी दिन भर काम करती रही। तू बहुत थक गई है, जाकर सो रह।"

"नहीं बाबू" बसंत ने प्रतिवाद करना चाहा।

"बाबू की बात नहीं मानेगा बसंता !" मास्टर साहब ने उसकी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा, चल भाग यहाँ से।"

"लेकिन"

"सुनता नहीं है ?" मास्टर साहब बोले, "और तारा तुम भी उठो, जाओ सोने।"

"अभी जाती हूँ बाबू" तारा बोली।

कुछ देर बाद कमरे में खड़े बसंत को देख कर मास्टर साहब बोले, "अरे ! तू अभी तक गया नहीं ? कान गरम करूँ क्या तेरा ?"

"जाता हूँ बाबू" बसंत कमरे से बाहर चला आया। कमरे से बाहर निकलते हुए उसने देखा कि तारा बीना के सिर पर हाथ फेर रही है। मास्टर साहब एक टक बीना की ओर देख रहे हैं। अम्मा पूजा में लीन हैं और बीना सो रही है। लालटेन की मन्द रोशनी में उनकी परछाइयाँ कभी-कभी दीवार पर काँप उठती हैं।

आँगन में पहुँच कर उसने देखा कि सुमंत के कमरे में बत्ती जल रही है और वह चारपाई पर चित्त लेटा छत की ओर देख रहा है। मीना कुँवर भी आँखे खोले लेटे हैं। लैम्प के मन्द प्रकाश में इनकी परछाइयाँ भी दीवार पर काँप-काँप उठती हैं।

अपने कमरे के दरवाजे के पास पहुँचकर उसने देखा कि राजू पलंग पर लेटा खिड़की से झाँकते चाँद की ओर देख रहा है। लालटेन की मद्धिम रोशनी में उसकी परछाईं भी दीवार पर काँप रही है।

एक मिनट तक कमरे के भीतर देखने के बाद वह सीढ़ी से नीचे उतरने लगा।

आँगन में पहुँचकर उसने एक बार फिर अम्मा के, सुमंत के और अपने कमरे की ओर देखा तथा हल्के कदम रखता हुआ, सिर झुकाये बाहर की ओर चल

१०

बसंत के सिर में बहुत दर्द हो रहा है। अंग-अंग टूट रहा है। बदन भी काफी गरम हो गया है। रह-रह कर आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। जी मचला रहा है उसका।

डगमगाते कदम रखता हुआ वह बाहर आँगन में पहुँचा। नाली के पास बैठकर जबरदस्ती मुँह मे उँगली डाल कर उसने क़ै की। पाइप खोल कर हाथ मुँह धोया और गीली उँगलियाँ बिखरे बालों में फेरता हुआ केले के पेड़ के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

उसका मन बहुत भारी है। रह-रह कर ठंडी साँस लेता हुआ, वह कुर्सी पर टिकी अपनी गर्दन इधर-उधर बेचैनी से मोड़ रहा है। कभी आकाश की ओर देखता है, कभी मास्टर साहब की बैठक की ओर कभी गुलाब के पेड़ की ओर। किसी भी चीज पर उसकी दृष्टि टिक नहीं पाती।

पलकें खुली रखने में भी अब उसे दर्द मालूम पड़ता है। कभी-कभी वह उन्हें जोर से बंद कर लेता है, कुछ देर तक बन्द रखता है और फिर खोल देता है।

किसी भाँति भी शान्ति न पाने पर उसने जेब से सिगरेट निकाल कर जलायी और एक लम्बा कश लिया। फेफड़े से बाहर धुँआ निकालते समय उसे खाँसी आ गई। खाँसी का दौरा खतम होने पर उसने पास ही थूक दिया। किंतु दूसरे ही क्षण न जाने क्यों सिहरकर उसने सिगरेट फेंक दी और लड़खड़ाता हुआ उस स्थान पर गया जहाँ उसका थूक पड़ा था। दियासलाई जला कर वह अपना हाथ धरती पर पड़े थूक के पास ले गया। दियासलाई के काँपते प्रकाश में काँपता गीला सफेद थूक देखकर वह स्वयं काँपने लगा, किंतु सलाई के बुझते-बुझते एक टेढ़ी मेढ़ी मुस्कान उसके सूखे ओठों पर खिंच गई।

"नहीं है, खून मेरे थूक में नहीं है" वह बड़बड़ाया और फिर आकर

कुर्सी पर बैठ गया। दोनों हाथ कुर्सी के हत्थों के नीचे लटका कर उसने अपने पैर पूरी लम्बाई तक फैला दिए।

उसकी गर्दन एक ओर झुक गई है। पलकें आधी बन्द हो गई हैं। सिर का दर्द बदन की हरारत और मन का भारीपन कुछ और बढ़ गया है।

"खून मेरे थूक में नहीं है। बीना के थूक में था। उफ़ बीना। काफी खून गिरा था। टी० बी० हो गई बीना को। नहीं टी० बी० नहीं।"

"बीना कितना बदल गई है। फुटपाथों पर पड़ी पीली पत्तियों की तरह हो गई है वह। सवेरे ओवरकोट पहिने थी। इसलिए पता नहीं चला। इन्जेक्शन लगाते वक्त देखा था। बिल्कुल सूख गई है। बार-बार डरता था कि सुई हाथ के भीतर उसकी हड्डी न छील दे। मांस न होने के कारण वह बहुत छोटी मालूम पड़ती है।"

"उसका शरीर सिकुड़ सा गया है। दुबले हाथ पैर। लम्बी गर्दन पर टिका छोटा सा मुख। सूखे पतले ओंठ, गालों पर झुर्रियाँ। आँखें, जैसे गढ़े में रुका गँदला बरसाती पानी। जर्जर खोखली बीना। थूक के साथ जीवन निकला जा रहा है उसका। सफेद, मुर्दा होती जा रही है वह। डर लगता है उसे देख कर।"

"पहले बीना ऐसी न थी। गौरैय्या की तरह वह घर में उछलती-कूदती फिरती थी। एक घड़ी भी चैन से न बैठती थी। कभी झरने की तरह हँसती थी, कभी हवा की तरह गुनगुनाती थी। भाभी की चोटी खींचकर भागती थी, अम्मा की माला छिपा देती थी। बाबू का चश्मा और भैया का हैट पहिन साहब बहादुर बन जाती थी। भैया की आँखें पीछे से जाकर बन्द कर उन्हें परेशान करती थी। दस बजे रात के बाद अगर मुझे पढ़ता देखती तो आकर लैम्प बुझा देती थी। सभी के लिए एक खिलौने सी थी वह।"

"घर में सबसे अधिक सुन्दर भी थी वह। गोरा रंग, भरा बदन, लम्बे बाल, लहराती लटें, चमकती हुई बड़ी-बड़ी काली आँखें। दृष्टि एक जगह स्थिर नहीं रहती थी उसकी। क्षण यहाँ तो क्षण वहाँ। पतले ओंठ, इस

तरह सदा खुले रहते थे जैसे वह मुस्कुरा रही हो। बात भी करती थी तो घूम-घूम कर, नाच-नाच कर, दौड़-दौड़ कर।"

"उसकी चंचलता, सौन्दर्य, हँसी, गाना देख कर अम्मा अक्सर कहती थी, 'मेरी बिटिया को कहीं नजर न लग जाए राम'। अम्मा का वाक्य पूरा होते ही हम सभी किसी आशंका से काँप जाते थे और अनेक दिनों तक बीना को अधिकाधिक अपनी आँखों के सामने रखने की सचेत रूप से कोशिश करते थे।"

"और आज वही हो गया जिसकी हमें उस समय अस्पष्ट, अनजानी आशंका थी। उफ़ ! उसकी चंचलता, उसकी मुस्कान, उसका रूप रंग, उसका गुनगुनाना, मचलना, उछलना, कूदना, नाचना, शैतानी; सब कुछ तो खतम हो गया है। जर्जर। खोखली हो गई है वह। टी० बी०। टी० बी० नहीं। टी० बी०।"

"सचमुच बीना को नजर लग गई है। किसकी बुरी दृष्टि पड़ गई मेरी दुलारी पर ? मैं उसकी बुरी आँखें फोड़ दूँगा। उफ़ ! काश मैं लन्दन न जाता। यहीं रहता।"

"अगर मैं यहीं रहता तो बीना का यह हाल शायद न होता। उन बुरे दिनों में कहीं नौकरी कर लेता। घर का काम-काज करने के लिए कोई नौकरानी रख देता। उसे दिन-रात मेहनत न करनी पड़ती। गंदे घर की दीवारों के भीतर बन्द न रहना पड़ता। रसोई के विषाक्त धुएँ में घुटना न पड़ता। यदि उसे प्लूरिसी होती भी तो ठीक समय पर समुचित इलाज किये जाने पर ठीक हो जाती। टी० बी० में न बदलती !"

"बीना की टी० बी० के लिए कौन जिम्मेदार है ? मैं ? हाँ मुझ पर ही है यह जिम्मेदारी। भाई की नजर लग गई बहिन को। उफ़ ! कितनी अजीब बात है यह ! कितना भीषण सत्य !"

"और भैया भी कितना बदल गए हैं। एक-एक हड्डी साफ दिखायी पड़ती है। माँस का नाम नहीं। रंग काला पड़ गया है। गढ़े में धँसी आँखें। जीवन के प्रति एक उदासीनता, अपने प्रति उपेक्षा और संसार के

प्रति घृणा। लगता है हार मान ली है भैया ने। अपनी किस्मत स्वीकार कर ली है। वह यह समझने लगे हैं कि आदमी का हर प्रयास विफल होता है। कोई भी कदम उठाना बेकार है। कोई भी सपना बनाना महज एक फूल्स पैराडाइज़ का निर्माण करना है। इसीलिए वह सबसे अलग रहने लगे हैं। घर में, घर वालों में उनकी दिलचस्पी खतम हो गई है। और जब कोई उनका यह एकाकीपन भंग करने की कोशिश करता है, उनकी अँधेरी दुनिया में प्रवेश करना चाहता है, तब वह बिगड़ जाते हैं। गुस्सा हो जाते हैं। भला-बुरा जो भी जी में आया बकने लगते हैं। यही कारण है कि उनका स्वभाव इतना रूखा और चिड़चिड़ा हो गया है।"

"किन्तु भैया के मन की आग बुझी नहीं है। कुछ चिनगारियाँ अभी शेष हैं। वह यह समझते हैं कि उनका यह रास्ता गलत है। उन्हें घर में, घर-वालों में दिलचस्पी लेनी चाहिए। यह कर्त्तव्य पालन और स्नेह दोनों की पुकार है। तभी वह बिगड़ने, गुस्से होते, लड़ने झगड़ने और बच्चों को पीटने के बाद अकेले में आँसू बहाते हैं। अपने को लांछित करते हैं, फटकारते हैं, पश्चात्ताप की लपटों में सुलगते हैं। दोनों ही दशा में वह नाश की ओर जा रहे हैं। महानाश !"

"पहले भैया ऐसे न थे। उन्हें देख कर गर्व से हमारी छाती फूल जाती थी। मांस पेशियों से भरा पुरा लम्बा तगड़ा कसरती बदन, चौड़ी कलाई, उन्नत ललाट, घुँघराले बाल, आँखें जिन्होंने कभी नीचे देखना न सीखा था। भरे गाल, भिचे ओंठ। दृढ़ निश्चय, अपार शक्ति।" उन्हें देखकर बाबू कहा करते थे, 'सुमंता जिन्दगी में बहुत ऊँचा उठेगा। बहुत बड़ा आदमी होगा एक दिन।'

"घर के हर छोटे से लेकर बड़े काम में भैया सहयोग देते थे। हर व्यक्ति का ध्यान रखते थे। सबको खुश रखने, आराम पहुँचाने की कोशिश करते थे। अम्मा के कमरे की सफाई, बाबू के जूतों पर पालिश। उनका हर काम करते थे वह। रात में सोने के पहले अम्मा बाबू का पैर दबाया करते थे। राजू बीना और मेरी पढ़ाई का ध्यान रखते थे।"

एक बार शहर में जोरदार हड़ताल होने के कारण स्टेशन पर कुली और इक्के तांगे नहीं मिले थे। उस समय बाबू का करीब एक मन भारी लोहे का बक्स अपने कंधे पर रख भैया तीन मील पैदल चलकर स्टेशन से घर आये थे।

एक बार दिवाली पर मजदूर नहीं मिले थे। दो दिन में भैया ने खुद ही सारे घर की सफाई और पुताई कर डाली थी।

जब मेरा पैर टूटा था, वह सदा मेरे पास बैठे रहते थे। कभी मुझे कंई किताब पढ़कर सुनाते थे, कभी कालेज की कोई मजेदार बात बताते थे। हर तरह से मेरा जी बहलाने की कोशिश करते थे। घर में किसी के सिर में दर्द भी होता तो वह डाक्टर के यहाँ भागे जाते थे।

"और वही भैया आज ऐसे हो गए! सबसे अलग! घर में वह ऐसे रहते हैं जैसे परदेस में हों। कोई अपना न हो। दुबले पतले जर्जर चूर। गृहस्थी के बोझ ने पीस डाला भैया को। भरी जवानी में कमर झुक गई। आँखों में बुढ़ापा झाँकने लगा। अपने बच्चों तक में दिलचस्पी लेना बन्द कर दिया है उन्होंने। भाभी से इस तरह व्यवहार कहते हैं जैसे पहिचानते ही न हों। उफ़! काश मैं लंदन न जाता। यहीं रहता।

अगर मैं यहीं रहता तो उन बुरे दिनों मे भैया के कंधे का कम से कम आधा बोझ अपने कंधे पर उठा लेता। इतनी मेहनत न करनी पड़ती उन्हें। इतनी ठोकरें न सहनी पड़तीं। बीमारी के बाद ही उन्हें फिर नौकरी करनी पड़ी। आराम करने का मौका न मिला। नौकरी के साथ-साथ नौ बजे रात तक पार्ट टाइम जाब भी करना पड़ा। नौ बजे सबेरे से नौ बजे रात तक काम। काम। काम। मनोरंजन का, आराम का एक मिनट नहीं। शेष बारह घंटों में भी रोटी दाल आटा नमक कपड़े लत्ते फीस आदि घर के हजारों खर्चों की चिंताएँ। टूट गए भैया गृहस्थी के बोझ से। भैया के इस टूटने और उनके इस असामयिक बुढ़ापे के लिए कौन जिम्मेदार है? मैं। हाँ मुझ पर ही है यह जिम्मेदारी भी। मेरी ही नजर लग गई है भैया को भी। भाई की नजर भाई को लग गई। कितनी अजीब बात है यह! कितनी भीषण सत्य! उफ़ बीना भैया भाभी।"

"बिल्कुल परी सी लगती थीं भाभी जब वह शादी के बाद पहली बार हमारे घर आयी थीं। मझोले कद की, दुबली पतली पर स्वस्थ। कुन्दनी रंग। लाल गाल। झुक-झुक पड़ती पलकें। ओठों में बलात रोक रखी गई मुस्कान। जरी के काम वाले हल्के नीले कारचोपी के लहँगे और रेशमी लाल दुपट्टे में सिमटी बैठी थीं।

अम्मा बापू को बधाई देते हुए पड़ोसी और रिश्तेदार बोले थे, 'लाखों में एक बहू पायी है तुम लोगों ने। इसके लिए तो चन्दन का महल बनवाओ।' अम्मा बाबू ने कहा था, 'घर की लक्ष्मी आ गई। भगवान को बार-बार धन्यवाद।'

हम लड़के-लड़कियों का तो रात-दिन उनके पास ताँता सा बँधा रहता था। उनके पास बैठ कर उन्हें घूर-घूर कर देखना, यही हमारा काम था उन दिनों। छोटे बच्चे उन्हें अपने खिलौने दिखाते। लड़कियाँ गाना और हम लोग कालेज के किस्से सुनाते। भाभी की एक बात सुन कर निहाल हो जाते, एक नजर क्या पाते स्वर्ग पा जाते। भाभी। भाभी। भाभी। सबकी जबान पर चौबीसों घंटे भाभी। हमारी आँखों में दिन-रात भाभी।

अरे हम तो हम, बाबू की बीमारी का झूठा बहाना कर एक महीने तक स्कूल नहीं गये थे। हर समय घूम फिर कर अन्दर पहुँचते थे। जब देखो तब पूछते, 'तारा बेटी ने नाश्ता किया। तारा बेटी ने खाना खाया। कैसी तबियत है बेटी?'

और अम्मा भी अपने हाथ से भाभी का शृङ्गार करती थीं। हमें डाँटने के बहाने ही उनके कमरे में पहुँचा करती थीं, 'क्यों रे बसंत, भाभी का आराम भी करने देगा या नहीं? बीना स्कूल नहीं जायेगी? अरे राजू, खाना खा ले। भाभी से फिर बातें कर लेना। कहीं भागी थोड़ी जाती हैं।'

और भैया। भैया तो बहुत झेंपने लगे थे भाभी के आने पर। कोई उन्हें पुकारता तो मारे शरम के जैसे उनकी जान निकल जाती।

छोटे लड़के भी उन्हें चिढ़ाने, उनसे मज़ाक करने लगे थे। भैया कभी-

कभी खीझ कर डाँट देते थे। लेकिन हम यह खूब समझते थे कि हमारा भाभी का नाम ले कर चिढ़ाना भैया को मिठाई से भी ज्यादा पसंद था।

भाभी को हम लोग घर का कोई काम न करने देते थे। वह अगर कोई काम करने चलतीं तो उनके पहले ही दौड़ कर हम उसे शुरू कर देते। अम्मा उन्हें खाना न बनाने देतीं, कहतीं, 'धुएँ से रंग खराब हो जायगा।' तरकारी न काटने देतीं, कहतीं, 'उँगली कट जायेगी।' झाड़ू न लगाने देतीं, कहतीं' 'कलाई में मोच आ जाएगी।'

भाभी कभी-कभी काम न मिलने पर रोने लगतीं और बाबू से जा कर शिकायत करतीं। बाबू उनकी शिकायत सुनते और कहते, 'अच्छा तारा बेटी। मैं मुझे एक काम देता हूँ। तू हर घड़ी मुस्कराया कर।' भाभी मुस्करा कर कहतीं, 'हाँ। यह भी कोई काम है ?' और हम सभी हँस पड़ते थे।

लेकिन हम लोगों की लाख सावधानी के बावजूद भाभी कोई न कोई काम पा ही जातीं। बाबू की कमीज में बटन टाँकना, अम्मा की धोती सीना, कपड़े धोना आदि अनेक कामों में वह उलझी रहतीं। भैया की ही तरह वह भी हर व्यक्ति का ध्यान रखतीं। जिस तरह मेरी जिन्दगी ढालने में भैया का हाथ है उसी तरह बीना और राजू को भाभी ने पथ दिखाया है। बीना को ठीक तरह कपड़े पहिनना, बाल काढ़ना, सीना पिरोना, गाना, नाचना सब उन्होंने सिखाया है। राजू को कपड़े पहिना कर स्कूल वही भेजा करती थीं। अम्मा अगर पैसा न देतीं तो राजू भाभी से ले जाता था।

"धीरे-धीरे अपने सुख-दुख, उलझने, संकट हम सभी भाभी के सामने रखने लगे। उन्हीं की राय हमारे लिए मान्य और महत्वपूर्ण हो गई। अम्मा ने घर के खर्च का, रुपए-पैसे का सारा हिसाब उनके जिम्मे कर दिया। सन्दूकों की चाभियाँ उन्हें दे दीं और अक्सर बाबू से कहने लगीं, "तो अब बहूरानी सम्हालेगी। चलो हम लोग तीरथ कर आएँ।"

"मेरा और कंतो का प्रेम भी घर में सब से पहले उन्होंने ही ताड़ लिया था। जब मैंने उनके आगे यह मीठा अपराध स्वीकार कर लिया था, झेंपकर, तब उन्होंने मेरे गाल पर एक हल्की मीठी प्यार की चपत लगा दी

थी। यही नहीं दूसरे ही दिन उन्होंने मुझे अकेले में बुला कर प्रेम, स्त्री-पुरुष के सम्बंध, अधिकार और कर्त्तव्य आदि सभी विषयों पर एक लेक्चर भी दे डाला था जो उस समय कुछ मेरी समझ में आया था, कुछ नहीं। मुझे और कंतों को वह हर रविवार को सिनेमा देखने भेजती। बंगला मिठाई खाने के लिए, एक दूसरे को प्रेजेंट देने के लिए और पिकनिक मनाने के के लिए रुपए देती थीं। लेकिन इसके साथ वह लेक्चर भी देना न भूलतीं थीं। कभी दुनिया की किसी बुराई के बारे में, कभी किसी इशारों में ही वह हमें गूढ़ से गूढ़ बातें समझा देतीं थी। अगर भाभी न होतीं तो शायद मैंने और कंतो ने भी जवानी के जोश में, कच्ची उम्र में वह बेवकूफियाँ की होती जिनके कारण आज देश के नब्बे प्रतिशत लड़के लड़कियों की जिन्दगी चौपट हो रही है।"

"भाभी के लिए मैं और कंतों शायद उस गुड्डे गुड़िया के बड़े रूप थे जिनका ब्याह वह लड़कपन में रचाया करती थीं। स्वीट भाभी। परीलोक की रानी।"

"और उन्हीं भाभी के बदन में आज खून की एक बूँद लगता है नहीं बची। रंग पीला पड़ गया। एनीमिया हो गया। खून नहीं बनेगा। बन सकता है? कौन जाने।"

"साज-सिंगार हँसी मज़ाक जैसे वह भूल गई हैं। आँखों के नीचे गाढ़ी काली रेखाएँ। पुतलियों में सावन भादों की घटाएँ, ऐसी जिन्हें बरसने का मौका नहीं मिला करता। जिसे हम छोटे से छोटा काम नहीं करने देते थे उसी के सिर आज घर का हर इन्तजाम। सबेरे पाँच बजे से रात बारह एक तक काम। इतना काम कि उन्हें अपने पति से बात करने की, बच्चों देख भाल करने की फुर्सत न मिले? यही नहीं। इस अधाधुंध काम के साथ उन्हें नौकरी भी करनी पड़े? डेढ़ सौ दो सौ रुपए मासिक की मास्टरी और वह भी मेरे लिए। महज़ इसलिए कि मेरी पढ़ाई लन्दन में जारी रहे। उफ़! काश मैं लन्दन न जाता।"

"अगर मैं यहीं रहता तो भाभी का यह हाल न होता। इतना काम, यह

मनहूस नौकरी न करनी पड़ती उन्हें। उनके बदन का खून और गालों की लाली बनी रहती। अपने बच्चों की देख-भाल करने का उन्हें समय मिलता। न जाने कितने मनोहर सपने बनाये होंगे उन्होंने मीना कुँवर को लेकर। मैंने उनका हर सपना तोड़ डाला। उफ़! मैंने भाभी से उनका पति छीन लिया, बच्चे छीन लिए। भैया से उनकी पत्नी छीन ली, बच्चे छीन लिये? मीना कुँवर से उनके माता-पिता छीन लिये! कितना बड़ा पाप है यह! कितनी बड़ी कृतघ्नता!

"भाभी की इस दुर्दशा के लिए कौन जिम्मेदार है? मैं, हाँ मुझ पर ही है यह जिम्मेदारी भी। मेरी ही नजर लग गई भाभी को भी। देवर की नजर भाभी को लग गई! कितनी अजीब बात है यह! कितना भीषण सत्य! उफ़ बीना, भैया, भाभी। अम्मा बाबू।"

"तुम अभी तक यहीं बैठे हो? सोने नहीं गये?" तारा की आवाज सुन कर उसने आँखें खोल दीं।

"अभी जाता हूँ भाभी" वह टालते हुए बोला।

"नहीं उठो। अभी चलो" कह कर तारा हाथ पकड़ कर उसे उठाने लगी। उसका हाथ पकड़ते ही तारा चौंक उठी।

"अरे! तुम्हारा बदन तो बहुत गरम है" यह बोली, "और तुम यहाँ ठंड में बैठे हो। चलो उठो यहाँ से।"

तारा ने उसे खींचकर कुर्सी से उठा लिया और घर के अन्दर ले जाने लगी। दरवाजे के पास पहुँचते ही बसंत ने कहा, "भाभी। मैं यहीं बैठक में सो जाऊँगा। बाबू की चारपाई तो खाली है। बिस्तर भी बिछा है।"

"अच्छा अभी लेटो बाबू की चारपाई पर मेरे सामने" तारा ने कहा।

"तुम मानोगी थोड़ी" कहता हुआ बसंत चारपाई पर जूते उतार कर लेट गया।

"सूट नहीं उतारोगे? अरे पाजामा पहिन कर लेटो" तारा बोली।

"सब ठीक है" बसंत ने रजाई ओढ़कर जवाब दिया।

"अच्छा अब चुपचाप सो जाना" कह कर तारा चली गई।

तारा के जाते ही उसने फिर दुखती आँखें बंद कर लीं। दिमाग काफी थका सा लग रहा था उसे।

"तो मैं यहाँ बाबू की बैठक में लेटा हूँ। हाँ यहीं आकर लेट गया था। मेरे कमरे में तो राजू लेटा है। और बाबू अन्दर हैं बीना के पास। अभी वैसे ही बैठे होंगे, आँखों में अगाध बेबसी का समुन्दर लिए। टकटकी लगाये बीना की ओर देख रहे होंगे, निश्चल।"

"बाबू का मन बहुत कमजोर हो गया है। बदन का मांस झूलने लगा है। चेहरा स्याह और रूखा हो गया है। आँखों में हर घड़ी आशंका, निराशा। एक बच्चे की तरह सहम जाते हैं। बात-बात में रोने लगते है; न जाने किस चिन्ता में दिन रात डूबे रहते हैं।"

"बाबू पहले ऐसे न थे। एक सेकंड भी खाली न बैठते थे। कभी हमें पढ़ाते, कभी टूटे फर्नीचर की मरम्मत करते थे। कभी कमरो की सफाई, दरवाजों पर वारनिश, पेड़ों की देख भाल। सवेरे हमें लेकर रोज घूमने जाते थे। शर्त लगा कर हमारे साथ दौड़ते थे। अक्सर जीत भी जाते थे वह हम सभी से। दोपहर को किसी को सोता देखते तो बिगड़ जाते, 'बड़े आलसी हो। कोई काम काज नहीं है क्या? अजगर की तरह पड़े हो। अभी से बूढ़े हो गए क्या?' अम्मा के पूजा-पाठ से तो उन्हें सख्त नफरत थी। अक्सर अम्मा से कहते, 'क्या ढोंग रचती हो बसंत की अम्मा!' दो घंटे तुम पूजा में नष्ट करती हो। दो घंटे में घर का कोई काम कर डालो। कोई काम न हो तो यह आलमारी में रखी चीजें ही साफ कर डालो। अरे सबसे बड़ी पूजा है जिन्दगी में अपना काम करते जाना और भगवान की पूजा तो आदमी हर समय कर सकता है। काम करती जाओ उसका नाम भी लेती जाओ।"

"बाबू का व्यवहार ऐसा था कि हम कभी यह अनुभव न करते कि वह हमारे पिता हैं और हम उनके पुत्र। वह एक बड़े मित्र के रूप में हमारे जीवन में आये। हँसना, बोलना, खेलना-कूदना, मज़ाक, मनोरंजन, हर क्षेत्र में वह हमारी ही उम्र के होकर हमारे साथ रहते थे। बात ही बात में हमारी हर समस्या सुलझाते हुए वह हमें जिन्दगी के उचित रास्ते पर आगे बढ़ाते चलते थे और

वह भी इस तरह कि हमें यह कभी बोध ही न हुआ कि हमारे रथ की लगाम सदा उनके हाथों में है।"

"जो बचपन में, स्कूल कालेज के दिनों में, इंग्लैंड में कहा करता था, वही इस वक्त भी मेरी जबान पर आ रहा है। जी चाहता है पुकार-पुकार कहूँ, हमारे बाबू बहुत अच्छे हैं! बहुत अच्छे हैं!"

"और उन्हीं बाबू का आज यह हाल हो गया है। दस कदम चलते हैं तो पैर काँपने लगते हैं। किसी को जोर से पुकारते हैं तो चेहरा लाल हो जाता है। छोटी-सी-छोटी चीज के लिए उन्हें दूसरों का मुँह देखना पड़ता है। एक पैसे की भी जरूरत होती है तो भैया से माँगना पड़ता है और ऐसा करते समय उनके माथे पर पसीना आ जाता है, आवाज बन्द सी हो जाती है।"

"डाक्टरों द्वारा चारपाई से बाँध-सा दिया जाना बहुत बड़ी चोट थी मेहनती, कर्मरत बाबू पर। घर की हालत बिगड़ना, बीना की बीमारी का बढ़ना, भैया का बोझ से टूटना, भाभी की मुस्कान का खोना तथा अनेक अन्य आफतों का आगमन देखना और अपने को अशक्त, असमर्थ, मजबूर पाना इससे बड़ी चोट थी उन पर। अपने को दूसरों पर आश्रित समझना सबसे बड़ी चोट थी उन पर। यही कारण है कि वह अन्दर से इतने कमजोर हो गए हैं। सोच में घुल-घुल गए हैं। आज वह अपने आपको परिवार के ऊपर एक बोझ, घूरे का कंकड़ समझने लगे हैं। उफ़! काश मैं लन्दन न जाता।"

"अगर मैं यहीं रहता तो बाबू का यह हाल न होता। भैया की बीमारी में उन्हें इतनी मेहनत न करनी पड़ती। स्कूल की नौकरी, दवा डाक्टर के पीछे चौबीसों घंटे की दौड़-धूप। रुपए पैसे, घर के हजारों खर्चों की चिन्ताएँ। काम चिन्ता! काम चिन्ता! काम चिन्ता! ब्लड प्रेशर न होता उन्हें अगर मैं यहीं रहता। उनकी जगह मैं मेहनत करता। उफ़! चिन्ताओं ने खा लिया बाबू को।"

"बाबू के इस बिखर जाने के लिए कौन जिम्मेदार है! मैं। हाँ मुझ पर ही है यह जिम्मेदारी भी। मेरी ही नजर लग गई है बाबू को भी। बेटे की

नजर बाप को लग गई। कितनी अजीब बात है यह! कितना भीषण सत्य। उफ़ बीना भैया, भाभी, बाबू! अम्मा।"

"अम्मा! मेरी अम्मा! परिवार पर आने वाली इन आफतों के कारण जिस तरह भैया बोझ से पिसकर सबसे अलग रहने लगे, भाभी ने सुख सपनों को तिलांजलि दे अपने को एक मशीन बना डाला, बाबू इतने कमजोर हो गए, बीना को टी. बी. हो गई, उसी तरह मेरी अम्मा ने अपने आप को पत्थर बना डाला है। ठोकरें सहते सहते, निस्तार का कोई रास्ता न मिलने पर उन्हें अपने से, संसार से विरक्ति हो गई है। उन्होंने सबसे नाता तोड़ लिया है और अब भगवान की ओर, पूजा-पाठ की ओर झुक गई हैं। इसके भीतर उनके मन की यह भावना भी छिपी है कि शायद भगवान उनकी पूजा से प्रसन्न होकर हमारे संकट दूर कर दें। अम्मा के मन में घर के प्रति, घर वालों के प्रति इतना मोह अभी बचा है। जब कभी यह मोह उभरता है वह सुबह से शाम से सुबह तक घर के काम काज में लग जाती हैं। किसी के हटाये नहीं हटतीं।"

"लेकिन आज अम्मा पत्थर हो गई हैं। उनके स्नेह का सरोवर क्षण-क्षण सूखता जा रहा है।

"अम्मा पहले ऐसी नहीं थीं। दुबली-पतली, नाटे कद की, छोटी सी, गोरी-गोरी अम्मा। मुख पर कोमलता, आँखों में गम्भीरता, बातों में सयानापन। व्यवहार में कुछ ऐसी बात कि लोग वही करें जो अम्मा चाहें। काम भी करती थीं, आराम भी। पूजा के साथ घर और घर वालों का ध्यान भी रखती थीं। किसी को उदास देखती तो कहतीं, "क्यों मुँह फुलाये बैठे हो? क्या बात है? किसने डाँटा है तुम्हें? क्या चाहिए?" और इस तरह अपने हाथ से हमारा मुँह उठा कर मुस्कराती हुई वह पूछतीं कि हमारा सारा दुख दर्द दूर हो जाता था।"

"रोज ही खाने के लिए नयी-नयी चीजें बनाती थीं वह। कभी किसी की पसन्द की, कभी किसी की और दोनों वक्त सबको खिला पिला कर खुद खातीं। हिंदी के समाचार पत्र और पत्रिकाएँ पढ़तीं। हम लोगों के कालेज के किस्से

बड़े चाव से सुनतीं और हर चीज पर अपनी राय देतीं। उनकी राय से असहमत कोई भले हो, लेकिन अपना मत रखने का उनका ढंग सब को पसंद आता था। घर का पाई-पाई का हिसाब वह एक कापी में लिखतीं। एक पाई का भी सामान उधार न मँगाती। नौकर चाकर की तनख्वाह वक्त पर देतीं। हम लोगों के कपड़ों की मरम्मत करतीं। बीना और भाभी को पुराने ढंग के गीत ढोलक बजा कर सिखातीं। खुद भी बहुत अच्छा गाती थीं अम्मा। इतना अच्छा कि उनका गाना सुन कर जो जहाँ होता वहीं गुनगुनाने लगता उन्हीं की देख भाल का परिणाम था कि घर की हर चीज चुनी, सजी सी रखी रहती थी। एक तिनका भी गंदगी का न दिखायी पड़ता। घर का काम वह खुद अधिक से अधिक करतीं, 'बीना तू जाकर पढ़। तारा बच्चों को सम्हाल। बसंत यहाँ बैठकर क्या कर रहा है, कालेज नहीं जाना है ? सुमंत बेटा तुम आराम करो, तुमको दफ्तर जाना है। राजू, मीना, कुँवर—अरे खेलने जाओ ! यह देखो, मास्टर साहब भी यहीं बैठे हैं। घूमने नहीं जाइयेगा कहीं ? छोड़ो तुम लोग यह सब काम काज। भागो यहाँ से। अभी मैं बूढ़ी हो गई हूँ क्या ? चलो यहाँ से भागो। चलो।' और जब हम सहज उनकी यह स्नेह भरी डाँट दुबारा सुनने की लालसा से काम काज न छोड़ते तब वह हँसती हुई कहतीं 'तुम लोग मानोगे थोड़ी'।

"खाना खाने के बाद रात को अम्मा के चारों ओर एक दरबार सा लग जाता था। वह मीना, कुँवर को कहानी सुनाती थीं। बच्चों के पीछे-पीछे हम लोग भी एक-एक कर पहुँच जाते थे। वही कहानियाँ, वही मज़ाक रोज सुनते लेकिन ऊबते कभी नहीं। कहानी सुनाने की उनकी शैली में ऐसा रस था कि हम वही बातें उनके मुख से बार-बार सुनना चाहते थे। अम्मा के चारों ओर हम लोग चाँद तारों की तरह घूमते थे। खाना-पीना, पढ़ना-लिखना, उठना-बैठना, सब उनके पास।"

"और उन्हीं अम्मा का आज यह हाल हो गया है। घर से घर वालों से वास्ता नहीं। चीजें बिखरी हैं, कूड़ा फैला है, जाला लगा है, उन्हें परवाह नहीं। कोई बीमार हो, मरे या जिये, उन्हें चिन्ता नहीं। आठ बरस की मीना

चूल्हा फूँके, राजू स्कूल न जाये, भाभी सुबह से रात बारह बजे तक काम करें, भैया बिना खाये दफ्तर चले जाएँ, बाबू बाहर से किसी काम के लिए चिल्लायें और कोई जवाब तक न दे, कुँवर भूखा सो जाय और वह चुप बैठी रहें, जैसे उनसे किसी बात से मतलब नहीं। बेबस अम्मा अपने को पत्थर बनाती जा रही हैं यह तो एक प्रकार की आत्महत्या है। उफ़! काश मैं लन्दन न जाता।"

"अगर मैं यहीं रहता तो अम्मा को वे दिन न देखने पड़ते जिन्होंने उन्हें ऐसा बना दिया है। यह कदम उठाने के पूर्व उन्होंने घर की हालत सुधारने के लिए भरसक मेहनत की होगी। हर तरह का प्रयास किया होगा। उन्होंने पड़ोसियों के कपड़े तक रात-रात भर सिये हैं।

उफ़! कितना घृणित है यह काम। कितना अपमानजनक! मेरा मन इसे कभी न स्वीकार कर सकेगा। यह कल्पना ही, कि अम्मा को दर्जी की तरह रात भर जाग कर कपड़े सीने पड़े, मेरे लिए अरुचिकर है। मैं इसे किसी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन अम्मा को यह करना पड़ा। मेरी वजह से करना पड़ा और यह करने के बाद भी जब वह घर की हालत न सुधार सकीं तब उन्होंने अपनी हत्या कर ली।

"अम्मा की इस आत्महत्या के लिए कौन जिम्मेदार है? मैं। हाँ मुझ पर ही है यह जिम्मदारी भी। मेरी ही नजर लग गई अम्मा को भी। बेटे की नजर माँ को लग गई। कितनी अजीब बात है यह! कितना भीषण सत्य! उफ़ बीना, भैया, भाभी, अम्मा, बाबू। राजू, मीना, कुँवर।"

"राजू, मीना, कुँवर। इन बच्चों की ओर किसी का ध्यान नहीं। फटे जूते, गंदी कमीज, पुराना पतलून पहिने राजू। आँखें झुका कर वह बाबू की ही तरह हर एक से सहम कर, डर कर बातें करता है। घर में चुपके से आकर सीधे अपने कमरे में चला जाता है। सोलह बरह की उम्र में ही कमर झुका कर, सिर नीचा कर चलता है। खाना-खाते समय कोई भी चीज दुबारा नहीं माँगता। अच्छा-बुरा कम-ज्यादा जो भी मिला खा लेता है। पाकेट खर्च के नाम पर एक पैसा नहीं माँगता, भाभी ही कभी-कभी दो-चार आने

जबरदस्ती दे देती हैं। किताब खरीदने के लिए, फीस देने के लिए अगर वह कभी कहता भी है तो उस पर डाँट पड़ती है। मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। घर मे किसी को जैसे अब उसकी जरूरत नहीं रह गई है। घर में है तो ठीक, नहीं है तो कोई बात नहीं। उफ़! कैसे रहता होगा वह इस घर में। इन लोगों के साथ? क्या सोचता होगा? कैसे बड़ा होगा?"

"और यही हाल मीना, कुँवर का है। आठ बरस की उम्र में ही मीना को घर के काम-काज में जुटा दिया गया है। बैल की तरह गाड़ी को जोत दिया गया है। उसे यह बताया गया है कि इस गाड़ी को खींचना ही उसका काम है। चूल्हा-चौका ही उसकी जिन्दगी है।

यह गाड़ी उसकी दुनिया है। इससे परे और कुछ नहीं है और अगर इसके परे कुछ दिखायी भी पड़े तो यह कहा जाता है कि वह उसके काम का नहीं है। इस पर भी अगर मीना उसे लेना ही चाहे तो उसके गालों पर दो चाँटे मार दिये जायँ। चूल्हा चौकी ही उसकी जिन्दगी है! पढ़ना-लिखना, घूमना-फिरना, नाच-गाना उसके किसी काम का नहीं है। गंदी फ्राक पहने, रूखे बाल मुँह पर डाले जब देखो तब वह कोई काम करती दिखायी पड़ती है और कुँवर तो बच्चा है। शायद इसीलिए सबसे अधिक दुर्भाग्य उसी का है। एक फटी बनियाइन पहिने अधनँगा कुँवर। घर भर में हर चीज को गौर से देखता फिरता है। बाल उत्सुकतावश अगर किसी चीज के बारे में वह कुछ पूछता है तो कुछ देर तक उसके प्रश्नों का उत्तर देने के बाद या तो लोग चुप हो जाते हैं या डाँट देते हैं। अक्सर अकेला बैठकर भी वह कुछ देखा करता है, सोचा करता है क्या? भगवान जाने। वह एक खिलौना, एक गुब्बारा भी खरीदना चाहता होगा तो उसे मन मार कर रह जाना पड़ता होगा।

"फटे कपड़ों में बिलबिलाते ये अभागे बच्चे। इनके चेहरे से मुस्कान नहीं बीमारी टपकती है। लगता है बरसों से इन्हें खाना नहीं मिलता है। रूखे पीले बदन में खून नहीं। इनके चारों ओर बस डाँट-फटकार मार-पीट। इनके आगे अँधेरा। इनके मन की अभिलाषाएँ विकसित होने के पहले ही

कुचली जा रही हैं। उफ़ राजू के यह कसरत करने के, घी, दूध खाकर स्वस्थ होने के, पनपने के, अच्छा विद्यार्थी बनने के दिन हैं। मीना के यह गुड़िया खेलने के, नाचने गाने के दिन हैं। कुँवर के यह खेल खेलौने के, तस्वीरों वाली रंगीन किताब के, परीलोक की कहानियों के दिन हैं। लेकिन नहीं। उन्हें ये सब चीजें नहीं मिल रही हैं। उनका भविष्य, उनका विकास सब चौपट किया जा रहा है राजू अपने आपको एक कुत्ता समझने लगा है। मीना अपने को वह बैल समझने लगी है जिसके कँधे से गाड़ी बँधी है जिसे गाड़ी खींचना ही है चाहे अपने आप, चाहे डाँट फटकार के चाबुक खाकर। और कुँवर ? उसे तो शायद अभी यह ज्ञान ही हुआ है कि वह आदमी का बच्चा है। भैया, भाभी, अम्मा, बाबू एक ठंढी साँस खींच कर रह जाते हैं इन बच्चों का यह हाल देख कर। लेकिन वह करें क्या। वे मजबूर हैं। चाहकर भी इनके लिए कुछ नहीं कर पाते। स्नेह ही सब कुछ नहीं होता। पैसा भी चाहिए इन बच्चों को ठीक तरह से पालने के लिए, उनकी इच्छाएँ पूरी करने के लिए और वह पैसा अम्मा, बाबू, भैया, भाभी के पास नहीं है। जो पैसा उनके पास था भी वह उन्होंने मेरे ऊपर खर्च किया। मुझे लन्दन भेजा, इतना पढ़ाया-लिखाया। काश ! मैं लन्दन न जाता। यहीं रहता।"

"अगर मैं लन्दन न जाता यहीं रहता तो इन बच्चों को वह सुख सुविधाएँ मिलती, जो इनका हक़ है। इनके ऊपर वह पैसा खर्च होता जो मुझे लन्दन भेजा जाता था। राजू की पढ़ाई ठीक चलती, मीना को गृहस्थी को गाड़ी में न जोता जाता, कुँवर की हर फरमाइश पूरी होती। उफ़ मैंने इनसे इनका हक़ छीन लिया, इनका विकास रोक दिया। इनका केरियर चौपट कर दिया। इनकी बलि मेरे ही कारण दी जा रही है। यह अक्षम्य पाप है। इसका प्रायश्चित नहीं है। इन बच्चों की जो बलि दी जा रही है, उसकी जिम्मेदारी भी मेरे ही सिर है। मेरी ही नजर लग गई है इन्हें भी। हाँ, मेरी ही बुरी नजर पड़ गई है बीना पर, भैया, भाभी पर, अम्मा, बाबू पर, राजू, मीना, कुँवर पर। कंतों पर भी !"

"नहीं। कंतो पर नहीं। कंतो को मेरी नजर नहीं लगी है। कंतो के नहीं। मैं कंतो को प्यार करता हूँ। बहुत प्यार करता हूँ। वह मेरी प्रेयसी है। प्रेयसी को प्रेमी की नजर नहीं लगा करती। कभी नहीं। यह नहीं हुआ करता।

लेकिन कंतो आज ऐसी क्यों हो गई है? क्या कारण है? पहले तो वह ऐसी नहीं थी? बोलते-बोलते उसकी वाणी तेज हो जाती है। एक विद्रोह सा उसके तन-मन को फोड़ कर बाहर आना चाहता है। थोड़ी देर बाद इधर-उधर सिर पटक कर यह असफल विद्रोह आँसुओं में डूब जाता है और कंतो विचारों में। यह सोच-विचार उसे बीमार कर देगा। पागल कर देगा। बुद्धि का टी० बी०! उफ़! कितना भीषण, कितना ज़हरीला, कितना बेरहम नाम है यह!

"कंतो की पढ़ाई-लिखाई बन्द कर दी गई। बाहरी दुनिया की ओर से उसकी आँखें फेर दी गईं। एक पट्टी सी बाँध दी गई उसकी आँखों पर। चौबीसों घंटे घर की दीवारों में बन्द। पढ़ने वाली, प्रतिभा सम्पन्न लड़की को एक किताब तक लाकर देने वाला कोई नहीं था? सिनेमा देखने की, सहेलियों के वहाँ जाने की, क्रीम पाउडर साड़ी लेने की और भी उसकी अनेक अभिलाषाओं पर तुषारापात। एक बन्धन में बाँध दी गई वह जिसे दूसरों का ख्याल कर तोड़ न पाती थी। इसलिए कभी सिर पटकती है, कभी विचारों में डूब जाती है। कंतो को खतम कर देगा यह सब। बुद्धि का टी० बी०! उफ़! काश मैं लन्दन न जाता!"

"अगर मैं यहीं रहता तो कंतो की पढ़ाई छुड़ा दी जाने पर उसे खुद पढ़ाता। उससे विवाह कर लेता। उसकी हर आवश्यकता पूरी करता। जिस तरह चाहती जीने की पूरी आज़ादी उसे देता। उसे यह मनहूस बीमारी न होती"

"तो कंतो के इस बुद्धि के टी० बी० के लिए भी मैं ही जिम्मेदार हूँ? मेरी ही नजर लग गई है उसे भी? खूब! प्रेमी की नजर प्रेमिका को लग गई! कितनी अजीब बात है यह! कितना भीषण सत्य! वाह रे मेरी जिन्दगी!"

'वाह रे मेरी जिन्दगी' बड़बड़ाते हुए बसंत ने आँखें खोल दीं। रजाई फेंक कर वह धीरे-धीरे उँगलियों से अपना माथा दबाने लगा।

उसका दिल बहुत तेजी से धड़क रहा है। सिर में जैसे कोई पत्थर कूट रहा है। बेचैनी से उसने अपना सिर तकिए पर इधर-उधर कई बार पटका। उठ कर सामने की खिड़की खोल दी और लेट गया। दरवाजे से तारा आती दिखाई दी। तारा को देखकर उसने आँखें बंद कर लीं। तारा ने उसे रजाई ओढ़ा दी और फिर चुपचाप अंदर चली गई। तारा के जाने के बाद उसने एक सिगरेट जलाई। दो तीन कश लेकर सिगरेट खिड़की से बाहर फेंक दी और आँगन में खिली चाँदनी को देखने लगा।

हल्की चाँदनी, टूटा हुआ फाटक का खम्भा, गुलाब के मुरझाये पेड़, केले के पास पड़ी टूटी खाली कुर्सियाँ, खिड़की पर पड़ा फटा पर्दा, हर चीज उसे कुछ अजब सी लगी। उसे लगा कि वह सभी चीजें हिल-हिल कर उसे अपने पास बुला रही हैं। बिल्कुल पास। लगा कि ये चीजें यहाँ हैं और नहीं भी हैं। यहाँ से कहीं बहुत दूर हैं, ऐसी जगह जहाँ वह कभी नहीं गया। उसकी दुखती पलकें झपने लगी हैं। दिमाग बिल्कुल खाली-सा पड़ रहा है। बदन बहुत थका हुआ है। वह सो जाना चाहता है। वह अपने आप को, हर चीज को भूल जाना चाहता है तथा उस लोक को जाना चाहता है जहाँ यह चाँदनी, ये मुरझाये फूल, खिड़की का यह फटा पर्दा और फाटक का यह टूटा खम्भा उसे ले जाना चाहता है। हाँ, वह जाना चाहता है यहाँ से दूर। बहुत दूर। उस लोक को। उसकी पलकें झपने लगी हैं।

"स्वर्ग मैंने देखा नहीं। सुना है उसके बारे में। वह अच्छाइयों का केन्द्र है। वहाँ की हर चीज अच्छी है।"

"मेरा घर भी पहले स्वर्ग की ही तरह था।"

"नर्क मैंने देखा नहीं। सुना है उसके बारे में। वह बुराइयों का केन्द्र है। वहाँ की हर चीज बुरी है।

"मेरा घर आज नर्क सा होता जा रहा है।

"मेरी ही नजर लग गई है इस मीठे घर को। हाँ, मेरी ही नजर लग

गई बीना को, भाभी, भैया को, अम्मा, बाबू को। राजू, मीना, कुँवर को, कंतो को और इस घर को भी !-काश यह मेरी बुरी नजर मुझे भी लग जाती !"

"जब बाबू को ब्लड प्रेशर हो रहा था, भैया की गृहस्थी के बोझ से कमर टूट रही थी, बीना की प्लूरिसी टी० बी० में बदल रही थी, भाभी के बदन का खून खतम हो रहा था, अम्मा पथरा रही थीं, राजू, मीना, कुँवर की बलि दी जा रही थी, कंतो को बुद्धि का बी० बी० हो रहा था, उस समय मैं लन्दन में मौज कर रहा था। इन सब झंझटों मुसीबतों से दूर। अनजान। टेम्स में बोटिंग, इंगालिश चैनेल में तैरना, होटल, रेस्तराँ, पार्टी, डिनर, डांस, स्काटलैंड भ्रमण, आयरलैंड के स्पतालों का दौरा, मरीजों की परीक्षा, आपरेशन, ताश, टेनिस, सिनेमा। उफ़ बन्द करो। स्टाप इट !"

'अम्मा के आँखों की रोशनी बिल्कुल खतम हो जाती तो ? बाबू का ब्लड प्रेशर फालिज में बदल जाता तो ? बच्चे आवारा हो जाते, भैया की संग्रहिणी आँतों का टी० बी० बन जाती, भाभी को और कोई बीमारी हो जाती, बीना मर जाती, कंतो ने आत्महत्या कर ली होती तो ? तो मैं क्या करता ? कैसे जीता इनके बिना ? खंडहरों के उल्लू की तरह रहता। दिन की रोशनी में खंडहरों की ओर देखने की मेरी डर के मारे हिम्मत न पड़ती। रात के अँधेरे में आँखें खोलता। सबसे अलग। अकेला, निराश्रित, अजनबी। पाप का बोझा कन्धे पर लादे। निरन्तर पश्चाताप की आग में सुलगता। अभिशप्त !"

"हो सकता है कि यहाँ रह कर भी मैं इनके किसी काम नहीं आता। इनकी मुसीबतें न दूर कर पाता। लेकिन तब यह सब मेरी आँखों के आगे हुआ होता। ये आफतें मेरी भी सिर पर छाई होतीं। ये चोटें मेरे सीने पर भी पड़ी होतीं। मेरा भी यही हाल होता। मैं भी इन्हीं की तरह होता। परिवार की उस डूबती नैय्या पर मैं भी होता। इनके साथ मैं भी डूबता जाता। धीरे धीरे। ऐसे। इस तरह। हाँ मैं भी डूबता जाता। धीरे-धीरे। ऐसे। इस तरह।"

बसंत सो गया है। गहरी नहीं टूटी-फूटी विशृंखल नींद में। सोने से पहले उसने दुखती थकी अधखुली आँखों से फाटक के टूटे खम्भे, गुलाब

के मुरझाये पेड़, खिड़की के फटे पर्दे और आँगन में छिटकी चाँदनी की एक झलक देखी थी।

"यह गाड़ी क्यों खड़ी हो गई? स्टेशन आ गया! इलाहाबाद तो ऐसा न था। गाड़ी भी सबेरे पहुँचनी चाहिए? अभी तो काफी रात है। यह मुझे गाड़ी से किसने फेंक दिया प्लैटफार्म पर! उफ़! बड़ी चोट आई।"

"हाँ ताँगा तो होगा। क्या कहा, तुम मेरा घर जानते हो? तुमने तो मेरा सामान अपने ताँगे पर रख लिया। मुझे बलात् ताँगे पर बैठा दिया। कहाँ लिए जा रहे हो मुझे? अरे!"

"यह रास्ता तो बिल्कुल अपरिचित है। सिविल लाइंस कहाँ गयी? कंतो का बंगला कहाँ है?"

"यह किस वीराने में तुमने ताँगा रोक दिया? चारों ओर उजाड़। हर पेड़ सूखा, हर मकान गिरा। यह तो मेरा मुहल्ला नहीं है।"

"इस चाँदनी से तो डर लगता है। बर्फ सी ठंढी, पत्थर सी जड़ यह चाँदनी। कितना भयानक है यह वीराना। कितनी मनहूस है यह खामोशी। एक आवाज तक नहीं सुनायी पड़ती। अरे कोई है? कोई सुनता है? कोई नहीं बोलता। कितनी अजीब जगह है यह। कितनी अजीब।"

"और यह खँडहर किसके हैं? अरे! यह तो मेरा मकान है। यह फाटक है, यह बाहर का आँगन है। यह बाबू की बैठक वह अम्मा का कमरा। यह रहा भैया का कमरा और वह है मेरा कमरा। लेकिन ये ऐसे कब हो गए? इनकी दीवारें कब गिरीं? छत कहाँ गयी? खिड़की दरवाजे क्या हुए? घर की सब चीजें धूल में मिली जा रही हैं। फूटी तस्वीरें, टूटी मेज कुर्सियाँ, भैया की साइकिल, राजू की किताबें, बच्चों के खिलौने, क्रीम की शीशी, फटी ढोल, गंदी रजाइयाँ, फटी चादरें, बीना का सितार। सभी चौपट हो रहे हैं। इन्हें देखने वाला कोई नहीं है क्या?"

"यह जाला कैसा लटक रहा है? यह तो मेरी ओर बढ़ता आ रहा है।

मुझे लपेटता जा रहा है। इसके तार तो क्षण-क्षण कड़े होते जा रहे हैं। उफ़ ! दम घुटने लगा।"

"अम्मा, बाबू मैं आ गया। भाभी, भैया मैं आ गया। राजू, बीना कहाँ हो ! मीना, कुँवर सुनते नहीं मेरी आवाज ! कहाँ गए ये लोग ! कहाँ गए !"

"टूटी दीवारों पर यह काँपती परछाइयाँ कैसी ! किसकी हैं ! आदमी की ही मालूम पड़ती हैं। कुछ बड़ी, कुछ छोटी। इधर ही आ रही हैं और पास आ गईं। और। और कुछ-कुछ पहिचान रहा हूँ ! अरे ! यह तो अम्मा, यह बाबू, ये भैया, भाभी, बीना, ये राजू, मीना, कुँवर, यह, यह तो कंतो है। तुम लोग ऐसे क्यों हो गए। परछाईं से क्यों हो गए ? बोलो, जवाब दो। क्या यह सब जो मैं देख रहा हूँ सच है ? अगर यह तुम लोग नहीं हो, महज तुम्हारी परछाइयाँ हैं तो तुम लोग कहाँ हो ! और अगर यह परछाइयाँ ही तुम लोग हो तो तुम्हारा मुख कहाँ है ? तुम्हारा हाथ-पैर कहाँ है ! तुम्हारा, तुम्हारा उफ़ ! तुम्हारा बदन कहाँ है ? कुछ तो बोलो। उफ़ ! तुम्हें ऐसा किसने कर दिया ?"

"क्या कहा, तुम लोग भी आज खंडहर हो गए हो ?"

"पत्थर की तरह क्यों देख रही हो अम्मा ? तुम्हारी आँखों की रोशनी क्या हुई ? बाबू को ब्लड प्रेशर बीना को प्लूरिसी कैसे हुई ? तुम्हारी कमर कैसे टूट गई भैया ? भाभी तुम्हारे बदन का खून कहाँ गया ? कंतो तुझे बुद्धि का टी० बी० कब हुआ ?"

"आवाजें ! टूटी-फूटी आवाजें, कराहती मुर्दा आवाजें !"

'ये पाँच बरस काटे नहीं कटे हैं बसंत !'

'मेरे बुरे दिन गए ! सुनती हो बसंत की माँ।'

'कुछ बताया तो नहीं बसंत को।'

'यह किसकी आवाजें हैं ! कौन बोल रहा है ? उँह। होगा कोई ! फिर आवाजें।'

'स्कूल नहीं जाऊँगा। पहले फीस दो तब जाऊँगा। पहले फीस दो तब जाऊँ।'

'मैंने घर भर का ठेका नहीं लिया है।'

'कोई किस्सा कहानी होती तो तुम्हें शुरू से अंत तक बता देती।'

'बस सुबह-शाम दो रोटी दे दिया करना। बोलो। दोगे न?'

'पता नहीं क्या हो गया है हम लोगों को। अब तो यह रोना-धोना भी पुराना पड़ गया है। भगवान जाने क्या होगा।'

'बस अपना, अपना, अपना। यही नारा है आजकल। यही हाल रहा तो घर-घर खून का झंडा फहरायेगा। अच्छा हुआ तू ऐसा होने के पहले घर आ गया।'

'अरे कलियुग आ गया है। पाप का घड़ा फूटने वाला है। हरे राम! हरे राम!'

"यह आवाजें तेज होती जा रही हैं। मैं इन्हें नहीं सुनना चाहता। मेरे सिर में दर्द हो रहा है। कोई इन्हें बंद कर दो। उफ़! आवाजें। फिर आ रही हैं। बमबख्त! मनहूस आवाजें। कान फाड़ देंगी यह तो।"

'चाचा तुम भी मोटर खरीदो। कै पैसे की मिलेगी?"

'दादी बहुत अच्छा कपड़ा सीती हैं। पड़ोसियों के कपड़े सीती हैं। जो पैसा पाती हैं उसी से तो बीना का इलाज होता है।'

'चाचा क्या हम लोग आदमी नहीं हैं?'

'भाभी तो कहती हैं लड़ाई बहुत बुरी चीज है। क्या बड़े आदमी भी लड़ते हैं?'

'भाभी भी नौकरी करती हैं। एक स्कूल में पढ़ाती हैं।'

'यह आदमी तो पापा की तरह है। इसने चोरी नहीं की होगी। मैं सरकार को अपनी बन्दूक से मार दूँगा।'

'नाराज अपनों से हुआ जाता है बेगानों से नहीं। मेरे घर का हाल भी पता लगाने की कोशिश की? पढ़ाई रोक दी गई। घर की दीवारों में बंद। दिन रात काम। रात को भी जब थकी-माँदी लेटूँ तुम्हारा यह मनहूस चेहरा सामने आ जाए। मैं ऊब गई हूँ सबसे। मुझे मार क्यो नहीं डालते डाक्टर बसंत कुमार?'

'मेरे लिए तो शादी होना न होना दोनों बराबर है। शादी ब्याह के दिन बीत गए मेरे तो। कोई दूसरी लड़की हो तो उसी से कर लो, बुलाना मुझे भी अपनी शादी में।'

'शटअप! बंद करो। ईश्वर के लिए बंद करो यह आवाजें। मैं पागल हो जाऊँगा।'

'एक विद्रोह सा उठता है। एक आहत नाग सी फुफकार उठती है जो मुझे खतम कर देगी या किसी और को।'

'बर्बरता तानाशाही साम्राज्यवाद पूँजीवाद! अक्लमंद आदमी की बात? एक बुराई के अनगिन रूप।'

'अहम्वादी! बकअप नेता। बुद्धि का पूँजीवाद। मलेरिया का मिक्श्चर।'

'बुद्धि का टी० बी! बुद्धि का टी० बी! बुद्धि का टी० बी।'

'अच्छी हो जाएगी बीमारी शादी ब्याह के बाद। चिन्ता न करो डाक्टर।'

'कितने बेवकूफ हैं हम दोनों। हर अक्लमंद आदमी हमारी तरह हो जाए।'

'कितने बेवकूफ हैं हम दोनों। कोई हमारी तरह न हो।'

"बीड़ी का धुआँ, गंदी गलियाँ, बदसूरत चेहरे। उफ़! एक मुर्दा साँप की तरह लिपटे जा रहे हैं मुझसे। गोला-गोला। बदबूदार साँप। क़ै हो जाएगी। ओं! ओ! कोई पानी दो। कोई मेरे सिर पर हाथ फेरो। मुझे लिटा दो। सुला दो। बहुत दर्द है। सिर फटा जा रहा है। साँप! गोला बदबूदार मुर्दा साँप! यह क्या है? ज्योतिहीन पानीदार। सफेद गली पुतलियों में लाल चकत्ते, मौत की आँखें! बीना का थूक! आवाजें फिर आवाजें।"

'खों खों खों खों। आफत मचा रखी है। मर भी नहीं जाती ससुरी।'

'आह। छोटे भैया कहाँ हो? बड़ा दर्द है। अम्मा कहाँ हैं?'

'मैं तो पत्थर हो गई।'

'पता नहीं क्या हो गया हम सब को। बसंता, तू तो बहुत बड़ा डाक्टर है। हमारी बीमारी भी दूर कर दे भैया !'

'भगवान जी बीना को अच्छा कर दो। मैं तुम्हें अपनी बन्दूक दे दूँगा।'

'बीना अच्छी तो हो जाएगी ?'

'हाँ बाबू अब छोटे भैया आ गए हैं। अब मैं बिल्कुल अच्छी हो जाऊँगी।'

"लेकिन यह थूक। ये खून के चकत्ते तो कुछ और कह रहे हैं। टी० बी० से एक ही दो रोगी बचते हैं। गरीब तो मर ही जाते हैं। सरकारी दवाखानों में दवा के नाम पर पानी मिलता है। फिर ? दवा कहाँ से आएगी ? पैसे तो मेरे पर्स के सब खतम हो गए हैं। कल क्या होगा ? सरकारी नौकरी में बड़ी धाँधली हो रही है। मोहन को खेती करनी पड़ी। भैरो को पान की दूकान खोलनी पड़ी। एम० ए० पास करने के बाद रामचन्द्र बनिए के यहाँ तीस रुपए का मुनीम हुआ। मेरे पास भी तो कोई सिफारिश कोई जोर नहीं है। फिर ? क्या करूँगा मैं ? केमिस्ट के यहाँ बैठा करूँगा। अनुमति तो मिल जाएगी। लेकिन सिविल लाइंस में तो हर केमिस्ट की दूकान पर दो डाक्टर आज बैठे दिखाई पड़े। शहर में कम से कम पाँच सौ डाक्टरों की दूकानें हैं। फिर ?

अरे ! आह ! कौन है ? यह मुझे कंकड़, कौन मार रहा है ? सिर फट गया। खून बहने लगा। दर्द। बहुत दर्द। बस करो भाई। मार ही डालोगे क्या ? गलती मेरी ? कौन सा अपराध किया है मैंने ?

हाँ। सच कहते हो। मैंने गलती की है। मुझ पर ही हैं सब जिम्मेदारियाँ। मेरी ही नजर लग गई है सबको। काश ! यह मेरी बुरी नजर मुझको भी लग जाती।

कितना बड़ा पाप किया है मैंने ! स्नेह का खूब बदला दिया है। खूब आराम पहुँचाया है मैंने इन लोगों को। उफ़ ! मैंने इन लोगों की हत्या कर दी है ! इन्हें एक दूसरे से छीन लिया है।

मारो। मारो और मारो। हंटर से मारो। खाल खींच लो मेरी। गोली से उड़ा दो। क्रूरतम यातनाएँ दो ! तड़पा-तड़पा कर मारो !

उफ़ ! बहुत बड़ा बोझ है। पिसा जा रहा हूँ। बदन फुँका जा रहा है इन अंगारों में। कोई मुझे बचाओ। मेरी सारी गलतियाँ, अपराध माफ़ कर दो। कोई नहीं सुनता। कब तक इस तरह सबसे अलग, अकेला, निराश्रित, अजनबी की तरह जिऊँ ? पिसता जाऊँ इस बोझ से ? जलता जाऊँ इस आग में ? क्षमा करो मुझे। उफ़, कोई क्षमा करने वाला तक नहीं बचा आज !"

'कर्र कर्र कर्र'

'कर्र कर्र कर्र'

"यह कौन बोल रहा है ? बड़ी भयानक आवाज है। यह वीराना, यह खामोशी, यह चाँदनी और यह आवाज। डर लगता है। यह तो उल्लू की आवाज है। उफ़ ! उल्लू बोल रहा है !

लेकिन ! यह आवाज तो मेरे ही गले से निकल रही है। नहीं यह मेरी आवाज नहीं है। मैं उल्लू नहीं हूँ। बसंत हूँ। बसंत ! डाक्टर बसंत कुमार एम. आर.सी.पी। लन्दन से डाक्टरी पास कर आज ही लौटा हूँ।

लेकिन मेरे हाथ पैर कहाँ गए ? ये पंख मेरे बदन से क्यों निकल रहे हैं ? उफ़ !

यह सब झूठ है। सपना है। यह अंधेरा, यह चाँदनी, ये खंडहर, ये परछाइयाँ, यह सभी झूठी हैं। सपना हमेशा झूठा होता है।

'आँ आँ।'

'आँ आँ आँ आँ'

"यह कौन रो रहा है ? अम्मा बाबू रोओ नहीं। भैया भाभी मत रोओ। चुप रहो बीना, कंतो। राजू, मीना, कुँवर, चुप हो जाओ बच्चो ! रोओ मत।

अम्मा की आँखों की रोशनी लौटेगी। बाबू का ब्लड प्रेशर ठीक होगा। भैया की कमर सीधी होगी। भाभी के बदन में खून बनेगा। कंतो, बीना की बीमारियाँ ठीक होंगी। राजू, मीना, कुँवर को उनका हक मिलेगा। यह घर फिर पहले सा होगा। चुप हो जाओ सब लोग। मैं तुम्हें तुम्हारी पहले की जिन्दगी दूँगा। अपने को मिटा डालूँगा तुम्हारे लिए। मेरे रास्ते में रोड़ा

बनकर अगर कोई व्यक्ति आयेगा तो उसका सिर कुचल दूँगा, समाज आयेगा तो उसे चूर-चूर कर दूँगा, सरकार आएगी तो उसे उलट दूँगा। मैं ईश्वर से भी लड़ने के लिए तैयार हूँ। तुम्हारे सुख सपने जहाँ भी होंगे मैं तुम्हें ला दूँगा। मुझ पर विश्वास करो।"

'हा हा हा हा
हा हा हा हा'

"यह कौन हँस रहा है मेरे ऊपर ? टूटे-फूटे बर्तन उछल कूद कर नाच रहे हैं। खंडहर पत्थर के स्वरों में कुछ गा रहे हैं। बन्द करो यह नाच गाना। डैम फूल। नाच गाने का समय नहीं है।"

'हा हा हा हा
हा हा हा हा'

"यह कौन हँस रहा है ? अँधेरा हँस रहा है। चाँदनी पीता हुआ, खंडहरों की निगलता हुआ यह भयानक अँधेरा हँस रहा है। उफ़ ! देखा नहीं जाता। सुना नहीं जाता।

कोई बात नहीं। हँसो ! खून हँसो मैं जानता हूँ कि तुम्हारी यह हँसी भी तुम्हारी ही तरह झूठी है। तुम झूठे हो, तुम्हारी हर चीज झूठी है। तुम लोग एक बुरे सपने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो। सपना सदा झूठा होता है। मुझे तुम्हारी परवाह नहीं। सत्य केवल मैं हूँ। सत्य केवल मेरी आवाज है। मैं जी रहा हूँ। तुम मुर्दा हो। तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं। मैं जिऊँगा। मेरे घर वाले जियेंगे। हँसो। रुक क्यों गए। दिल खोलकर हँसो। मैं भी तुम्हारे ऊपर हँसूँगा। आओ हम आज एक दूसरे से बाजी लगा कर हँसें। देखें कौन विजयी होता है। जो जीतेगा उसी की बात सच मानी जायेगी। चलो। एक। दो ! तीन !

हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा ?
अरे ! तुम हँसे नहीं। अच्छा लो फिर से शुरू करो। रेडी स्टेडी गो—
हा हा हा हा हा हा !

कहाँ चले जा रहे हो ? मैदान छोड़ कर भाग रहे हो मिस्टर अँधेरे ? कायर ! नपुंसक ! तुम हार गए । मैं जीत गया ।

हा हा हा हा हा हा हा हा !

मैं जीत गया । अम्मा, बाबू मैं जीत गया । भैया, भाभी कंतो, बीना, मैं जीत गया । राजू, मीना, कुँवर मैं जीत गया । मैं जीत गया ।

हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा !

बसंत की आँखें खुल गईं । अजब सा लगा उसे जब उसने अपने को हँसते पाया । रात बीत चुका थी । सूरज निकलने वाला था । हल्की-हल्की लालिमा आकाश में दिखायी पड़ रही थी । एक अँगड़ाई लेकर वह उठ बैठा और हलके कदम रखता हुआ आँगन मे पहुँचा । हवा के शीतल झकोरों में वह झूमता हुआ टहलने लगा । थोड़ी देर बाद गुलाब के पेड़ में खिले एक नये फूल पर उसकी नजर ठहर गई ।

"हलो डाक्टर । सबेरा मुबारक" एक आवाज आई ।

उसने चौंक कर इधर-उधर देखा पर कोई न दिखायी पड़ा ।

"मुझे नहीं पहिचानते ? मैं तुम्हारा घर हूँ बसंत । सबेरा मुबारक हो" आवाज फिर आयी ।

"ओह ! तुम्हें भी सबेरा मुबारक हो" बसंत के अधरों से निकला ।

"ईश्वर तुम्हारी मदद करे बेटा ।"

"धन्यवाद मेरे मीठे घर" कह कर बसंत ने अपनी रिस्टवाच देखी । ६ बजे थे ।

"तो जिन्दगी का नया दिन शुरू हो गया" उसने धीरे से कहा और कुछ गुनगुनाता हुआ फिर टहलने लगा ।